मंदार
विकास
परिषद
मंथनम
एक सांस्कृतिक पहल
399 ₹
समुद्र मंथन की भूमि मंदार से प्रकाशित

हे पापहरणी माय

प्राण मोहन प्राण

हे पापहरणी माय
तोरों पानी में डुबकी लगाय
रोग-शोक जाय छै धुआय
प्राण जाय छै अघाय
हे पापहरणी माय...

अमृत तोरों पानी छै माय
माथा मंदार मुकुट कत्ते सुहाय
विष्णु आरो लक्ष्मीजी रोजे नहाय
अजब-गजब तोरो कहानी छै भाय
हे पापहरणी माय...

ताप आरो श्राप-पाप
तोहीं हरी लिहो माय
दुखवा सब दिहो भगाय
रोगी, भोगी, योगी सभ्भैं
तोरे गुन गाय
हे पापहरणी माय...

अच्छा रं घोंर दीहो
सुंदर रं बोंर दिहो
बेटी के दीहो बिहाय
गोदी में दीहो माय
बलकवा खेलाय
हे पापहरणी माय...।

मंदार विकास परिषद की प्रस्तुति

प्रेरणास्त्रोत

सर्वश्री उदय शंकर झा 'चंचल' व प्राण मोहन 'प्राण'

संपादक

उदयेश रवि

शोध

संजीव चौधरी
निरंजन राणा

प्रबंधन

राजीव ठाकुर
रमेश चंद्र झा

परियोजना निदेशक

एस. राजेन्द्र

संपादन सहयोग

इज़हार अशरफ
मिथिलेश चौधरी

कंसेप्ट

मंदारेश्वर

संसाधन

पूर्णचंद्र

प्रसार

मनोज द्विज

ग्राफिक्स/सज्जा

दीनमणि

स्वामी, मुद्रक व स्वत्वाधिकारी उदय शंकर झा 'चंचल' द्वारा मंदार विकास परिषद के लिए पंडित नसीवर झा भवन, गुरिया, बौंसी, बांका, बिहार से प्रकाशित। स्मारिका में प्रकाशित सभी आलेखों के लिए उनके लेखक उत्तरदायी होंगे।
विवादित विषय/विषयों से पत्रिका या संपादक/प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

यह उत्सव भी आपके नाम है, मंदारवासियों!

मंदार को आपने और मैंने कई दशक से देखे हैं। और, मंदार ने कई सभ्यताओं को देखा है। उसने प्रकृति को बनते और बिखरते हुए देखा है। पौराणिक मान्यताओं ने उस मंदार को धार्मिक दृष्टिकोण दिया तो सभ्यता और संस्कृति परिपूर्ण हो गई। पहाड़, वृक्ष, पोखरे, शिलाखंड पूजे जाने लगे। इसी सम्मान ने हमें संस्कार दिए और मनोरंजन के लिए पर्व भी। यह उसी पर्व का प्रारूप था जिसमें घर-गांव समाज के लोग इकट्ठे होकर वैदिक मान्यताओं (पृथ्वी, सूर्य, वायु, अग्नि, जल) को पूजने लगे थे और जीवनचर्या में उतारने लगे थे। यक़ीनन यहीं से धर्म और इसका इतिहास बन गया।

'स्थानीय इतिहास' के मुद्दे पर ऐसा कहना अन्याय होगा कि हम स्वयं में संतुष्ट हो पाएं। ऐसा हम सबके साथ है सिर्फ आपके या हमारे साथ नहीं। लेकिन इस सच को हम झुठला नहीं सकते कि हम 'जानना' नहीं चाहते हैं। जिज्ञासा सभी के अंदर है मगर वक़्त की कमी के कारण सभी लोग ढूंढ नहीं सकते। क्या आपको कोई पूछे कि आपके मंदार या अंग क्षेत्र का इतिहास क्या है तो आप सामनेवाले को जवाब तो जरुर दे देंगे मगर खुद को संतुष्टि नहीं होगी। आपका अंतर्मन गुरुधाम के सान्याल जी और लाहिड़ी महाशय या महर्षि मेंही या फिर महात्मा भोली बाबा सरीखे लोगों के परिचय को भी खोजेगा। तब जानना चाहेगा कि मुझे क्यों नहीं पता है इसका?

आज डॉ. अभयकान्त चौधरी, प्राण मोहन 'प्राण', पद्मश्री चित्तू टुडू, डॉ. अमरेन्द्र, नरेश पाण्डेय 'चकोर', परशुराम ठाकुर ब्रह्मवादी जैसे लोग जिन्होंने मंदार पर और अंग क्षेत्र के बारे में काफी-खोजबीन के बाद बराबर लिखते हुए लोगों को अपने स्थानीय इतिहास को बताने में ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा दे दिए। वे अब अफ़सोस करते हैं कि इसे समझने-समझाने और प्रकाशित करनेवाले ज्यादा लोग नहीं रहे। यहां के अधिकतर लोग अपनी सभ्यता और संस्कृति से कट रहे हैं। धर्मप्राण लोगों की संख्या कम हो गई है जिनका बड़ा सहयोग संस्कार और संस्कृति बचाने में रहता था। इसबार इस पुस्तक के प्रकाशन में मेरा भी व्यक्तिगत अनुभव बहुत बुरा रहा है मगर मेरी कोशिशें इस बावत कम नहीं हुईं। बावजूद इसके, इसी स्थानीय इतिहास-संस्कृति को जीवंत रखने के लिए हमने सन 2005 के बाद बौंसी से 'मंथनम' स्मारिका का प्रकाशन फिर से करने का बीड़ा उठाया है। पिछले अंकों की तरह इसमें भी मंदार, मकर संक्रांति, सागर मंथन, तीर्थ और पर्यटन जैसे कई अन्य विषय समाहित हैं ताकि आपको हम आपकी संस्कृति और इतिहास से वाकिफ करा सकें।

हमने पहले 'मंथनम' स्मारिका का प्रकाशन सन 1999 में और दूसरे का सन 2003 में किया था जिसका विमोचन क्रमशः भागलपुर के तत्कालीन आयुक्त श्री हेमचंद सिरोही और रेल राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह (अब दिवंगत) ने किया था। सन 2007 में 'मंदराचल' का प्रकाशन भी अनूठी पहल थी, जिसने स्तर को बरक़रार रखने की पूरी कोशिश की थी।

हरबार की तरह इसबार भी लेख/कंटेंट, डिज़ाइन, प्रिंटिंग, बाइंडिंग और आपके द्वारा तथा आपके सहयोग से दिए गए विज्ञापन की स्तरीयता को बनाए रखने की पूरी कोशिश रही। विश्वास के साथ कहूँगा कि इसबार भी पहले से बेहतर पुस्तक प्रकाशन का लक्ष्य था और ऐसा हुआ है।

साथ ही, आशा दिलाता हूँ कि आगे भी मंदार के सम्बन्ध में और रोचक जानकारियां प्रकाशित करता रहूंगा। ...और अंत में, हरबार की तरह कवि महाप्राण निराला जी की प्रेरणादायी कविता-

उगे अरुणाचल में रवि
आयी भारती-रति कवि-कंठ में,
क्षण-क्षण में परिवर्तित होते रहे प्रकृति पट,
गया दिन आयी रात
गई रात, खुला दिन
ऐसे ही संसार के बीते दिन,
पक्ष, मास वर्ष कितने ही हज़ार
जागो, फिर एक बार!

मकर संक्रांति का ज्योतिष

उमाकांत प्रेम

पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। पृथ्वी का गोलाई में सूर्य के चारों ओर घूमना 'क्रान्ति चक्र' कहलाता है। ज्योतिष शास्त्र में इसे 'राशि-चक्र' कहते हैं। सूर्य के गमण करने का जो मार्ग है उसमें कुल 27 नक्षत्र हैं तथा उनकी 12 राशियां हैं। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश 'संक्रान्ति' कहलाता है। खगोलशास्त्र के अनुसार सूर्य एक राशि में एक माह अर्थात लगभग 30 दिन विचरण करता है, जबकि चन्द्रमा एक राशि में लगभग सवा दो दिन रहता है।

जब सूर्य मकर राशि पर आता है, तभी 'मकर संक्रान्ति' होती है। वैसे संक्रान्ति हर महीने में होती है, परंतु कर्क एवं मकर राशियों पर सूर्य के जाने का विशेष महत्व होता है। जिस दिन भगवान सूर्य दसवीं राशि मकर में प्रवेश करते हैं उस दिन को मकर संक्रान्ति कहते हैं। सूर्य का मकर रेखा से उत्तरी कर्क रेखा की ओर जाना 'उत्तरायण' तथा कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर जाना 'दक्षिणायन' है। ऋतु गणना के अनुसार शिशिर, वसंत एवं ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं में सूर्य उत्तर दिशा में गमन करता है।

उत्तरायण की अवधि छह मास की है। उत्तरायण काल में सूर्य अपने तेज से संसार के जलीय अंश को सोख लेता है तथा वायु तीव्र एवं शुष्क होकर संसार के जलीय अंश का शोषण करती है। वर्षा, शरद एवं हेमंत इन तीन ऋतुओं में सूर्य दक्षिण की ओर गमन करता है। दक्षिणायन की अवधि भी छह मास है। इन तीन ऋतुओं में मेघ, वर्षा एवं वायु के कारण सूर्य का तेज कम हो जाता है। शास्त्रों के अनुसार उत्तरायण का समय देवताओं का दिन एवं दक्षिणायन देवताओं की रात्रि होती है।

महाभारत में भीष्मपर्व में यह चर्चा है कि मृत्युशैय्या पर लेटे पितामह भीष्म अपने प्राणों को सूर्य के उत्तरायण होने तक रोके रहे। सूर्य के उत्तरायण होने पर माघ मास में शुक्लपक्ष की अष्टमी को उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर स्वर्ग के लिए प्रयाण किया था। जब सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण होने लगता है तो दिन बड़े होने लगते हैं। शीत का प्रकोप शांत होने लगता है। दक्षिणायन में सब इसके विपरीत होता है। भारतीय ज्योतिष गणना के अनुसार मकर संक्रान्ति का दिन 'बड़ा दिन' है। इस दिन सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर प्रस्थान करता है।

मकर संक्रान्ति सूर्य उपासना का पर्व है। सूर्य अपने तेज से अन्न को पकाता है, समृद्ध करता है। इसीलिए उसका एक नाम 'पूखा या पूषा' अर्थात पुष्ट करने वाला है।

मकर-संक्रांति के दिन सूर्य पूजा करके कृषक अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। महाभारत के अनुसार इस दिन भगवान विष्णु साक्षात सूर्य का स्वरूप धारण कर स्वयं के प्रकाश से सम्पूर्ण जगत को आलोकित करते हैं। अतः मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य-स्नान करना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है। जगत के पालक भगवान सूर्य ऊर्जा, चेतनाशक्ति, आयुष, ज्ञान एवं प्रकाश के देवता हैं। मकर-संक्रान्ति का दिन हिंदुओं के लिए विशेष पुण्य का दिन है। मकर राशि में सूर्य के प्रवेश के बाद 40 घड़ी अर्थात 16 घंटे पुण्यकाल माने गए हैं। इनमें भी 20 घड़ी अर्थात आठ घंटे अत्युत्तम हैं।

इस समय दान-पुण्य, जप-तप एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान आदि करने से अनंत पुण्य होता है। मकर संक्रान्ति में तिल की बड़ी महिमा मानी गई है, इसलिए इसे 'तिल संक्रान्ति' भी कहते हैं। तमिलनाडु में मकर संक्रान्ति को पोंगल के रूप में तीन दिन तक मनाने की परम्परा है। साधारणतया वहां पोंगल का मतलब 'खिचड़ी' होता है। पंजाब में मकर संक्रान्ति की पूर्व संध्या पर 'लोहड़ी' का पर्व मनाया जाता है। असम में इसे 'माघ बिहू' के नाम से मनाया जाता है। उत्तर भारत में इस पर्व पर गंगा-यमुना अथवा पवित्र नदियों या सरोवरों में स्नान करने एवं तिल, गुड़, खिचड़ी आदि दान देने का महत्व है। बंगाल में इस दिन 'सोदो-व्रत' का विधान है। दक्षिण बिहार में इसे लाई या 'लड़ुवा का पर्व' कहते हैं। प्रत्येक घर में इस अवसर पर चावल, चना, मकई, लावा, बाजरा आदि के भूंजे के गुड़ के साथ लड्डू तैयार किए जाते हैं। तिल का लड़ुवा बनाना आवश्यक माना जाता है। पश्चिम बिहार में इसे 'दही चूड़ा' का पर्व कहते हैं। मकर संक्रांति वस्तुतः अज्ञानता पर प्रकाश डालने और दूसरों को जगाने का पर्व है।

वस्तुतः मानव जीवन में व्याप्त अज्ञान, संदेह, जड़ता, कुसंस्कार का निराकरण कर मानव-मस्तिष्क में ज्ञान, चेतना, ऊर्जा एवं ओज का संचार तथा मानव-जीवन में सुसंस्कारों की प्रेरणा उत्पन्न कर सम्यक दिशा एवं मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के क्रान्तिकाल को संक्रान्ति कहते हैं अर्थात इसमें मानस-पटल का परिवर्तन है जो जीवों के प्रति दया और क्षमा की शक्ति बढ़ाता है।
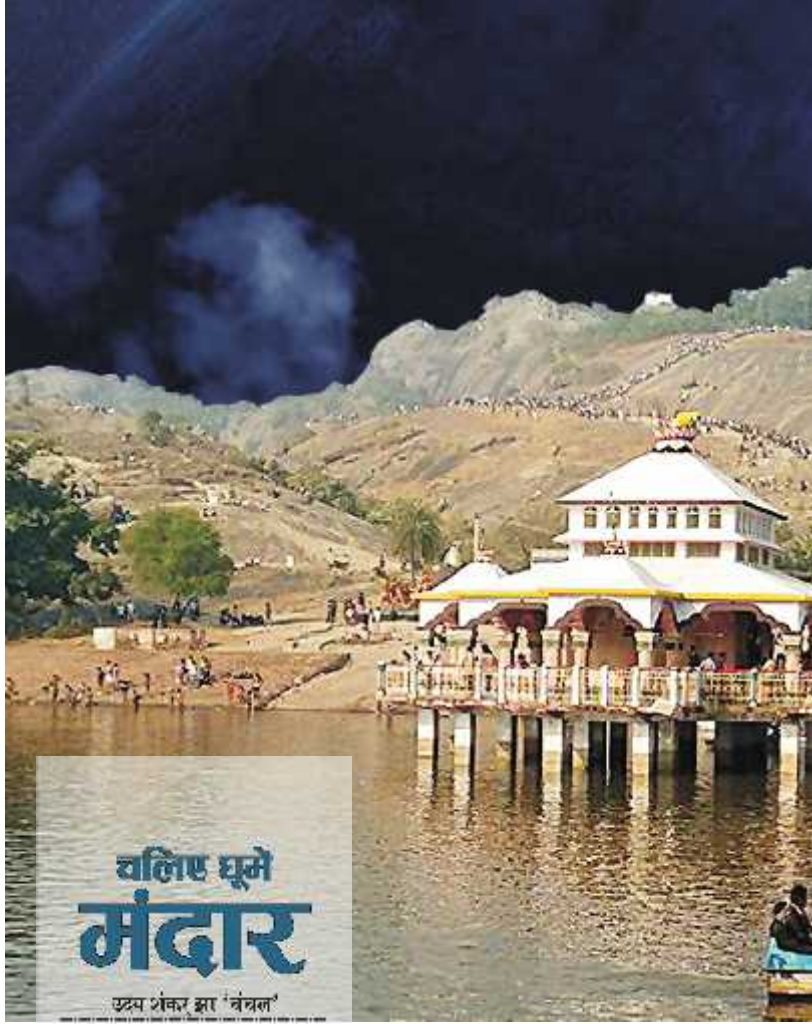
बिहार के बांका जिले में घूमने की बात करें तो मंदार क्षेत्र सबसे अव्वल रहेगा। अव्वल इस मामले में कि मंदार प्राकृतिक सुषमा से तो भरा-पूरा है ही, इसके पौराणिक महत्व इसके साक्ष्यों में चार चांद लगा देते हैं। पहाड़ी, पठारी और मैदानी रूप वाले बौंसी प्रखंड में इस मंदार पर्वत का होना बांका जिला ही नहीं, पूरे बिहार सूबे के लिए गौरव की बात है।

साफ जलवायु, पानी और यहां के लोगों के भले व्यवहार के चलते बौंसी को जो दर्जा मिला है उसे पुख्ता करने में धर्म और इतिहास की भूमिका कम नहीं है। बात अगर हिंदू धर्म की करें तो जहां से सृष्टि निर्माण हुई है, यह वही जमीन है। धर्मशास्त्र बताते हैं कि समुद्र मंथन यहीं से हुआ। बासुकी नाग को इस पर्वत के चारों ओर लपेटकर देवता और दानवों ने अपनी-अपनी ताकतों से इसे खींचा और चौदह रत्न निकाले। धन और भाग्य की देवी लक्ष्मी, अमृत और विष यहीं से निकले। विष को लेने जब कोई तैयार नहीं हुए तो देवाधिदेव महादेव ने इसे पीया और अपने गले में ही रोककर नीलकंठ कहलाए। मतलब कि धर्मशास्त्रों की मानें तो लक्ष्मी यहीं पैदा हुईं और शिव का नीलकंठ रूप यहीं से ज्ञात हुआ।

समुद्र मंथन की बात कुछ अटपटी लगती होगी। तिसमें भी, कहां मंदराचल या मंदार पर्वत और कहां समुद्र! नक्शे में देखें तो इधर नजदीक में समंदर बंगाल की खाड़ी में बसता है जो यहां से सैकड़ों मील दूर है। किंतु, समुद्र की स्थिति को जीवविज्ञान की स्थापित मान्यता 'फ्लोरा और फउना' से अगर तुलना की जाए तो यह पता चलता है कि समुद्र की स्थिति जमीन की ऊंचाई-नीचाई के अनुसार बदलती रहती है और यह कोई अजूबा बात नहीं कि जहां पहले समुद्र हुआ करता था वहां अभी सभ्यताएं जीवित हैं और कुछ जगहों में समुद्र के नीचे भी विकसित सभ्यताओं के अवशेष मिले हैं। एडम्स ब्रिज (श्री राम सेना द्वारा निर्मित लंका पुल) और श्रीकृष्ण की द्वारिका सहित कई नगरों की सभ्यताओं के अवशेष समुद्र की तलहटी में मिले हैं। यहां यह सोचा जा सकता है कि क्या ये भवन, नगर और सभ्यताएं पानी के नीचे ही बसाई गई थी! दिमागी कीड़े को थोड़ा और जिंदा करें तो पाएंगे कि जमीन के जीवों का विकास जलीय जीवों के बाद हुआ है। मतलब कि आदमी से पुराने जीव कोरल रीफ व मछलियां हैं और ये सभी पानी में ही पैदा हुईं। कुछ वर्षों पूर्व आई सुनामी ने स्थापित वैज्ञानिक सिद्धांत को सत्यापित करते हुए यह बता दिया कि समुद्र जमीन की तरफ कैसे बढ़ता है और अपनी जमीन; जहां वह पहले लोटता था उसे कैसे छोड़ता है। इससे यह साबित होता है कि पूरी पृथ्वी की सतह पर समुद्र कहीं भी फैल सकता है। हो सकता है कि मंदार की भूमि पर भी ऐसा कुछ हुआ।

बात अगर जैन धर्म की करें तो इनके बारहवें तीर्थांकर वासुपूज्यजी को इसी पर्वत पर निर्वाण मिला। ये चंपा (भागलपुर) के राजघराने से थे। जैनियों के लिए यह क्षेत्र काफी महत्व रखता है। वजह यही है कि हर साल जैन धर्मावलंबी हजारों की संख्या में यहां वासुपूज्य की निर्वाणस्थली को देखने आते हैं।

यातायात

मंदार क्षेत्र पटना-हावड़ा रेलमार्ग की दोनों ब्रॉड गेज़ लाइनें क्रमशः जसीडिह और भागलपुर से जुड़ी जुड़ी हुई है। जसीडिह-भागलपुर पहुंच पथ से सड़क मार्ग के जरिए 81 किलोमीटर पर बौंसी या उससे आगे महाराणा हाट उतरकर मंदार पहुंचा जा सकता है। अगर आप भागलपुर से आना चाहते हैं तो 50वें किलोमीटर पर बौंसी है। यहां देखने और घूमने के लिए कई जगह हैं। इनमें चांदन डेम भी काफी सुदर्शन और सुरम्य है। बौंसी से मंदार की दूरी 5 किलोमीटर और चांदन डेम की दूरी 21 किलोमीटर है। दोनों तरफ जाने के लिए पहुंच पथ फिलहाल दुरूस्त हैं।

वैसे तो प्राकृतिक सुषमा से भरपूर व आध्यात्मिक चेतना के लिए यह दर्शनीय स्थल है।
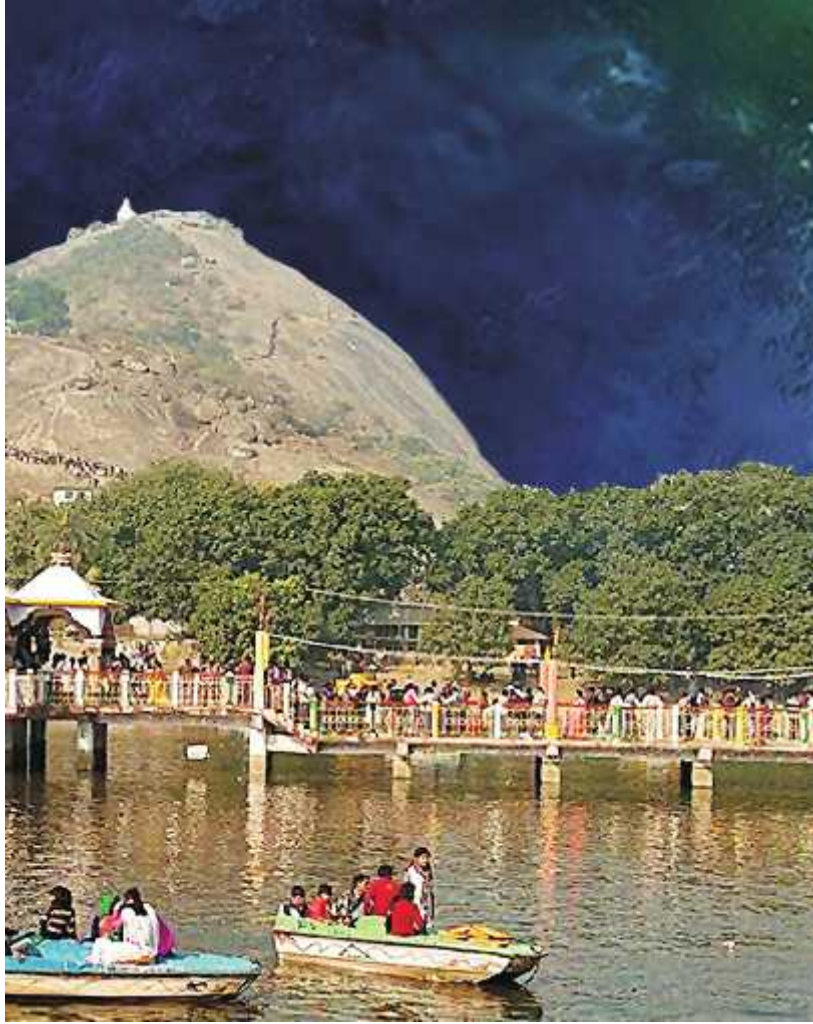
मंदार

लगभग 700 मीटर ऊंचे इस पर्वत का मुख्य हिस्सा एक ही पत्थर से बना है। कुछ लोगों का कहना है कि मदार यानी आक के फूलों के बहुतायत में मिलने की वजह से इस पर्वत का नाम मंदार पड़ा।

पापहरणी तलाब

मंदार पर्वत की तलहटी में यह तलाब स्थित है। कहा जाता है कि एक चोल वंशीय राजा और एक रानी कोण देवी ने इसके विचित्र प्रभाव वाले जल में स्नान करके अपना कायाकल्प किया।

लक्ष्मी-नारायण मंदिर

पापहरणी तलाब के बीचोंबीच यह खूबसूरत मंदिर कुछ वर्षो पहले बनाया गया है। देवोत्थान एकादशी तथा मकर संक्रांति के अवसर पर इसकी छटा देखते ही बनती है।

सफा धर्म मंदिर

पापहरणी के तट पर आदिवासियों व गैर-आदिवासियों का यह मंदिर स्थापित है जिसे गुरु चंदरदास ने बनवाया है। दरअसल सफा मत के पीछे संतालों की अति-प्राचीन वैष्णव परम्परा है। वे हज़ारों की संख्या में प्रतिवर्ष 13 जनवरी को यहां आकर पूजा-पाठ व मन्त्र सिद्धि करते हैं। यहां वे राम-लक्ष्मण की पूजा करते हैं और रातभर उत्सव मनाते हैं।

सर्प चिह्न

मान्यता है कि समुद्र मंथन में बासुकीनाग की पेटी के घर्षण से यह चिह्न बना है जो पर्वत के ऊपर कुछ दूर तक देखा जा सकता है।

मंदिरों के भग्नावशेष

यहां मंदिरों के कई भग्नावशेष हैं जो पर्वत के ऊपर और नीचे भी हैं। मुगलकाल में कालापहाड़ के आतंक का गवाह यहां के मंदिरों के ये भग्नावशेष हैं। ये टूटे-फूटे मंदिर अब इतिहास सुनाने को व्याकुल हैं जिसपर शासन और आस-पड़ोस के लोगों की लापरवाही और कहर दोनों बरपा है।

सीता कुंड

पर्वत के ऊपर यह तलाब है जिसके पानी की सतह तलाब के भित्तिचित्र छूते हैं। कहते हैं कि माता सीता ने यहां स्नान कर लव-कुश जैसे योद्धाओं की माता होने का गौरव पाया।

गौशाला

भगवान नरसिंह को रोजाना खीर भोग लगाने हेतु यहां गाएं पाली जाती हैं। ये देसी गाएं श्रद्धालुओं द्वारा दिए गए दान से प्राप्त हैं जिसकी देखभाल कुछ साधु करते हैं।

शंख कुंड

सीता कुंड व गौशाला के समीप यह छोटा-सा शंक्वाकार कुंड है जिसकी तली में 9 मन के पत्थर का वामहस्त का शंख है। इसे पांचजन्य शंख कहा गया है।

नरसिंह गुफा

8x12x3 फीट ऊंचाई वाली इस अंधेरी गुफा में भगवान नरसिंह की प्रतिमा है जिनकी पूजा रोजाना होती है। इसके अन्दर काफी झुककर जाना पड़ता है।

राक्षस मधु का विशाल सिर

वास्तुशिल्प के दृष्टिकोण से यह भित्तिचित्र मंदार पर्वत पर उपस्थित सभी मूर्तियों और भित्तिचित्रों में अव्वल है जिसकी तारीफ कई विदेशी विद्वानों ने की है। अंग्रेज विद्वान शेरविल ने इस विशाल शिल्प को 'मिस्र देश की पुरातन शैली का' कहा है।

पाताल कुंड

मधु के सिर के पास ही पाताल कुंड है। कुछ लोग इसे आकाशगंगा भी कहते हैं। यह एक गुफा है जिसमें सालोंभर पानी रहता है। इस पानी में कई तरह की वनस्पतियां पाई जाती है जिसे पादप विज्ञानी दुर्लभ प्रजाति के शैवाल मानते हैं।

निर्मल जल कुआं

इस कुआं का पानी काफी मीठा है जिसकी पौष्टिकता प्रमाणित और सत्यापित है। यह कुआं भगवान नरसिंह मंदिर और सीता कुंड के बीच में

है जहां पानी पीने के लिए एक बाल्टी और रस्सी पड़ी रहती है।

काशी विश्वनाथ मंदिर

पर्वत के ऊपर यह शिवजी का एक मंदिर है। कुछ वर्षों से यहां स्थानीय लोगों के सहयोग से शिव बारात निकाली जाती है। कहा जाता है कि देवताओं के वैद्य धन्वंतरी के पौत्र दिवोदास ने काशी-विश्वनाथ का आह्वान कर मंदार पर इनको स्थापित किया था।

राम झरोखा

पर्वत के शिखर के थोड़ा नीचे झरोखानुमा एक कमरा है जहां से नीचे और पड़ोस के इलाके का अवलोकन किया जा सकता है। इसे अब जैनियों ने अपने कब्जे में कर लिया है। पहले इसमें भगवान राम और माता सीता के चरणों के निशानों के दर्शन करने लोग जाते थे।

जैन मंदिर (हिल टॉप)

यह मंदिर 50-60 वर्षों से जैनियों के कब्जे में है जिसे स्थानीय ज़मींदारों ने चंद रुपयों के लालच में बेच दिए। आज भी यह विवादित स्थल है। कई अंग्रेज इतिहासकार और सर्वेयरों ने लिखा है कि यह मंदिर लॉर्ड विष्णु का है।

मंदार विद्यापीठ

पर्वत की तलहटी से दक्षिण-पूर्व में मंदार विद्यापीठ है जिसे इस क्षेत्र के गरीब-महरूम लोगों को शिक्षा देने के लिए दक्षिण भारतीय विद्वान आनंद शंकर माधवन ने अपने गुरु व पूर्व राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन से आशीर्वाद लेकर खोला था। अब यहां मंदार विद्यापीठ के तहत एक +2 तक एक स्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय चलता है।

चैतन्य पीठ

'नाम संकीर्तन' की बंगाली परंपरा के संचालक चैतन्य महाप्रभु सन 1905 में यहां आए थे। उसी समय इस पीठ की स्थापना की गई थी जो मंदार विद्यापीठ और पर्वत के बीच में है। अभी भी यहां प्रतिवर्ष इसकॉन से जुड़े लोग बड़ी संख्या में यहां आते हैं।

नाथ मंदिर

प्राचीन काल में नाथ संप्रदाय के नगा साधु यहां रहकर साधना किया करते थे। यह ग्रेनाइटों के स्लैब से बना घर था, जो अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। यह पर्वत के पूरब में चैतन्य पीठ के करीब अवस्थित है।

लखदीपा मंदिर

इन मंदिरों में कभी दीवाली के अवसर पर लाखों दीये जलाए जाते थे। इस मंदिर का अवशेष झाड़ियों के बीच मौजूद है। यह मंदिर नाथ मंदिर के समीप ही है। इसी जगह गौरी-शंकर के अलग-अलग मंदिर थे जिनका भग्नावशेष अभी भी मौजूद है।

राजा-रानी पोखर

लखदीपा मंदिर के करीब ही दो छोटे-छोटे लेकिन काफी गहरे पोखर हैं जिन्हें राजा-रानी पोखर कहा जाता है। राजकाल में इनमें राजा और रानी अलग-अलग स्नान कर गौरी-शंकर की पूजा करते थे और लखदीपा में दीये जलाते थे। दोनों पोखरों के बीच में एक बंगला बना हुआ था जो अब धराशायी है। यह बंगला राजा-रानी के ठहरने के लिए हुआ करता था।

नगाड़ा पोखर

इस पोखर के बीच में एक लाट होने के कारण इसे लाट वाला पोखर भी कहते हैं। यह अत्यंत ही खूबसूरत तालाब है। लखदीपा से इसकी दूरी तकरीबन 2 किलोमीटर है। यहां बेहतरीन नक्काशी किए गए पत्थरों के बड़े-बड़े स्लैब आपको इर्द-गिर्द बिखरे हुए मिल जाएंगे।

सागर मंथन स्टेच्यू

कुछ वर्षों पूर्व इस स्टेच्यू को शांति निकेतन (बोलपुर, पश्चिम बंगाल) के शिल्पी नंद कुमार मिश्र ने बनाया। यह पापहरिणी के ऊपर एक बड़े पत्थर के टीले पर सफा मंदिर के पास है।

लाल मंदिर

मंदार-बौंसी पथ पर पापहरणी के समीप लाल मंदिर है जिसे बिड़ला परिवार ने बनवाया था। मूलतः यह शिव मंदिर है। देखरेख के अभाव में आज यह वीरान पड़ा है।

जैन मंदिर (बारामती)

भगवान बासुपूज्य ने यहां साधना की थी। यह मंदिर मंदार-बौंसी पथ पर है। इस मंदिर की बनावट में जैन शैली की छाप है।

मधुसूदन मंदिर

यह प्राचीन मंदिर बौंसी में स्थित है। जनवरी माह की 14वीं तारीख से यहां वृहद मेले का आयोजन होता है जो एक महीने तक चलता है। यह मंदिर उड़िया और मुग़ल शैली का मिश्रित रूप है। मकर संक्रांति, रथयात्रा व कृष्ण जन्माष्टमी यहां के प्रमुख त्यौहार हैं। भगवान विष्णु की प्रतिमा की पूजा यहां होती है। मंदिर परिसर में सीता-राम-लक्ष्मण-हनुमान व गरूड़ की प्रतिमाएं भी हैं। यहां भगवान मधुसूदन की दिनचर्या दर्शनीय है जो सालोंभर अबाध रूप से चलता है।

गरूड़ रथ

भगवान मधुसूदन को रथयात्रा के वक्त बौंसी बाजार तक इसी रथ से लाया जाता है। यह काफी खूबसूरत है जो स्थानीय लोगों की सहायता से निर्मित है। इसके निर्माण में कुछ स्थानीय लोगों ने काफी मेहनत की है।

फगडोल

मुग़ल शैली में निर्मित यह संरचना मुग़ल स्थापत्य कला की मेहराब की तरह ही है जो चार पायों पर टिकी हुई है। यहां साल में एकबार होली के वक्त भगवान मधुसूदन की प्रतिमा को रखकर गुलाल चढ़ाया जाता है। इस वक्त यहां काफी भीड़ होती है जिसमें नगरवासी हिस्सा लेते हैं। यह संरचना मधुसूदन मंदिर के ठीक सामने है।

प्राचीन शिव मंदिर

मधुसूदन मंदिर के पास स्थित यह शिव मंदिर काफी पुराना है। इसमें शिव-पार्वती-गणेश व नंदी की प्रतिमाएं हैं।

संत भोली बाबा आश्रम

नाम-परंपरा के निर्वाहक भोली बाबा का यह आश्रम उनके शिष्यों के लिए तीर्थ है। बाबा स्थानीय निवासी थे और नाम संकीर्तन के स्वयं प्रचारक थे साथ ही लोगों को कलियुग में नाम-प्रचार करने का उपदेश देते थे। यह आश्रम मधुसूदन मंदिर के करीब है।

शिव मंदिर

यह रेलवे स्टेशन के समीप है जिसे एक धर्मप्राण स्थानीय मारवाड़ी परिवार ने पूजा-अर्चना के लिए बनवाया था।

जैन मंदिर (बौंसी)

यह जैन मंदिर दक्षिण भारत की स्थापत्य कला से प्रभावित जैन आर्किटेक्चर का मालूम होता है। यह रेलवे स्टेशन के नजदीक है। प्रतिवर्ष यहां हजारों तीर्थयात्री मंदार-तीर्थ के दर्शन के लिए आते हैं।

काली मंदिर

बौंसी थाना के गेट के पास यह काली मंदिर है जहां रोज शाम को भक्तों की काफी भीड़ रहती है। इस समागम के पीछे की मान्यता है कि माता के दरबार में यहां तुरत सुनवाई होती है और मनौतियां पूरी होती हैं।

दुर्गा स्थान

वैष्णवी रूप की पूजा इस इलाके में सिर्फ यहीं होती है। पूजा के समय यहां लोगों की काफी भीड़ रहती है। प्रत्येक बुधवार व शनिवार को यहां हाट लगता है। पहले इस हाट से प्राप्त आय देवी मंदिर की परंपराओं के लिए आरक्षित हुआ करता था। इसकी शुरुआत लक्ष्मीपुर इस्टेट ने की थी।

गुरुधाम

योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल ने इस जगह की स्थापना योगपीठ के तौर पर की। बौंसी-भागलपुर रोड पर बौंसी से एक किलोमीटर की दूरी पर यह जगह है। हर साल बसंत पंचमी के अवसर पर यहां उनके परंपरागत शिष्यों की भीड़ रहती है।

गुरुकुल

श्यामाचरण पीठ से संचालित इस गुरुकुल की स्थापना वैदिक ज्ञान और रिसर्च के लिए की गई है। यह संस्था गुरुधाम के अहाते में ही निर्मित व वित्तपोषित है। यहां संस्कृत बोर्ड आधारित शिक्षा दी जाती है। यहां के वेदपाठियों की देश-विदेश में काफी मांग है। यह संस्थान गुरु-शिष्य परंपरा की बेहतरीन मिशाल है। इसकी स्थापना योगिराज भूपेंद्र नाथ सान्याल ने की थी।

ठहरने के लिए

बौंसी में मंदारहिल रेलवे स्टेशन के परिसर में 12 कमरों वाले रेलवे गेस्ट हाउस का निर्माण मालदा रेल प्रमंडल ने सन 1998 में कराया है। चूंकि इस रेल लाइन को हावड़ा मेन लाइन के ब्रॉड गेज से जोड़ने की परियोजना पर काम चल रहा है इसलिए अफसरों के यहां ठहरने के लिए इसका निर्माण कराया गया है। किंतु, आम लोग भी रेलवे द्वारा निर्धारित राशि को अदा कर यहां कमरा किराए पर ले सकते हैं।

आईबी, आईबी-वन विभाग (मंदार), आईबी-सिंचाई, छापोलिका धर्मशाला (बौंसी), जैन धर्मशाला और कई होटल भी हैं।

मंदार में
लखदीपा मंदिर के सामने
पार्वती और शिव के
अलग-अलग मंदिरों के भग्नावशेष,
कपली गाय, पर्वत के
पूर्वी और उत्तरी ओर फैले
खूबसूरत तड़ागों को देखना
न चूकें।

कब आएं

वैसे तो आप वर्ष में किसी भी समय आ सकते हैं और आनंद उठा सकते हैं। लेकिन, जनवरी, 13 को मंदार में सफा धर्म के मानने वालों का राष्ट्रीय मेला लगता है जिसमें कंपकंपाती ठंड में इस धर्म के अनुयायी साधना करते हैं। इस अवसर पर प्रशासन द्वारा अलाव की व्यवस्था रहती है। साथ ही चिकित्सा सुविधाएं भी उपलब्ध रहती है।

जनवरी, 14 से यहां एवं बौंसी में मधुसूदन मंदिर के सामने एक महीने तक मकर संक्रांति के अवसर पर मेला लगता है। इस वक्त प्रशासन की ओर से सभी तरह की आवश्यक सेवाएं मुहैया कराई जाती हैं। पूर्वी बिहार का यह सबसे बड़ा मेला है।

जुलाई-अगस्त में मौसम साफ रहने की वजह से फोटोग्राफी करनेवालों के लिए यह क्षेत्र पसंदीदा है। साथ ही यहां के मुख्यमार्ग पर श्रावण महीने में बासुकीनाथ जानेवाले कांवरियों को देखकर आनंद उठाया जा सकता है। साथ ही, उनकी सेवा करके पुण्य अर्जित की जा सकती है। वनस्पतियों का अध्ययन करनेवाले और इसे संचय करनेवालों के लिए यही समय सबसे अच्छा होता है। अतएव, इस मौसम में आपको वनस्पतियों के जानकारों से आपकी मुलाकात हो सकती है। लेकिन, सबसे बड़ी बात है कि बारिश की वजह से पत्थरों पर उग आई काई/शैवालों की वजह से आपको तकलीफ उठानी पड़ सकती है। इस वक्त आपको संभल कर चलना होगा।

विश्व में लगभग 700 मीटर ऊंचा 'मंदार' एकलौता पर्वत है जिसका मुख्य पर्वत एक ही चट्टान से बना है। यह मुख्य पर्वत अपनी शृंखलाओं में सबसे ऊंचा है।
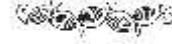
पुरात्व विशेषज्ञ बताते हैं कि यह पर्वत 'हिमालय' से भी पुराना है।

जनजातियों या आदिवासियों का सबसे बड़ा मेला मंदार पर्वत के नीचे प्रतिवर्ष 13 जनवरी को लगता है सिर्फ रातभर की पूजा के लिए तकरीबन 80 हजार लोग अलग-अलग समूहों में यहां आते हैं और बेहद सर्दी में भी स्नान-पूजन-ध्यान-भजन-कीर्तन करते हैं। ये आदिवासी कई प्रान्तों से आते हैं और राम-लक्ष्मण की पूजा करते हैं। इतने कम समय के लिए इतनी बड़ी संख्या में आदिवासियों का धार्मिक प्रयोजन के लिए जुटने की खबर आपने भी कभी देखा-सुना नहीं होगा। इन्हें 'साफा होड़' के अनुयायी कहते हैं।

मंदार का लखदीपा विश्व का एकलौता मंदिर है जहां एक लाख से अधिक दीये जलाने के लिए उतने ही ताखे बनाए गए थे जिसे अब भी इस भग्नावशेष में देखे जा सकते हैं। पूरे भारतवर्ष में एक भी प्राचीन मंदिर अब तक ज्ञात नहीं है जहां एक साथ एक लाख से अधिक दीये जलाने की व्यवस्था हो।

शंख कुंड के अंदर पानी में डूबे पत्थर के शंख का शिल्प अचंभित करनेवाला है। आप यह सोचकर दंग रह जाएंगे कि इस दुर्गम में इसके शिल्प को कैसे गढ़ा गया होगा?

समुद्र के नीचे

मंदार का सच

संजीव चौधरी

समय-समय पर हमें कुछ ऐसे प्रमाण मिलते रहते है जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि हमारे पौराणिक पात्र, पौराणिक घटनाएं मात्र हमारी एक कल्पना नहीं, बल्कि एक हक़ीक़त है। इसी क्रम में एक और नया प्रमाण मिला है देवताओं और दानवों के बीच हुए समुद्रमंथन के बारे में। जिसमे देवताओं और दानवों ने वासुकी नाग को मंदराचल पर्वत के चारों ओर लपेटकर समुद्र मंथन किया था।

दक्षिण गुजरात के समुद्र में एक पर्वत मिला है। कहा जा रहा है कि यह वही समुद्र मंथन वाला मंदार पर्वत है। वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर इसकी पुष्टि भी की जा चुकी है। पिंजरत गांव के समुद्र में मिला पर्वत बिहार के बांका में विराजित मूल मंदार शिखर जैसा ही है। कहा जा रहा है कि गुजरात और बिहार का पर्वत एक जैसा ही है। दोनों ही पर्वत में ग्रेनाइट की बहुलता है। इस पर्वत के बीचों-बीच नाग आकृति भी मिली है।

सामान्यतः समुद्र की गोद में मिलने वाले पर्वत ऐसे नहीं होते। सूरत के आर्कियोलॉजिस्ट मितुल त्रिवेदी ने कार्बन टेस्ट के परीक्षण के बाद यह निष्कर्ष दिया है। उन्होंने दावा किया है कि यह समुद्र मंथन वाला पर्वत ही है। इसके समर्थन में अब प्रमाण भी मिलने लगे हैं। ओशनोलॉजी ने अपनी वेबसाइट पर इस तथ्य की आधिकारिक रूप से पुष्टि भी की है।

सूरत के ओलपाड से लगे पिंजरत गांव के समुद्र में 1988 में प्राचीन द्वारकानगरी के अवशेष मिले थे। डॉ. एसआर राव इस साइट पर शोधकार्य कर रहे थे। सूरत के मितुल त्रिवेदी भी उनके साथ थे। ज्ञातव्य हो कि ये डॉ. एसआर राव वही हैं जिन्होंने समुद्र की तली में श्रीकृष्ण की द्वारिका के प्रमाण ढूंढे हैं। एक विशेष कैप्सूल में डॉ. राव के साथ मितुल त्रिवेदी भी समुद्र के अंदर 800 मीटर की गहराई तक गए थे। तब समुद्र के गर्भ में एक पर्वत मिला था। इस पर्वत पर घिसाव के निशान नजर आए। ओशनोलॉजी डिपार्टमेंट ने पर्वत के बाबत गहन अध्ययन शुरू किया। पहले माना गया कि घिसाव के निशान जलतरंगों के हो सकते हैं। विशेष कार्बन टेस्ट किए जाने के बाद पता चला कि यह पर्वत मंदार पर्वत है। पौराणिक काल में समुद्र मंथन के लिए इस्तेमाल हुआ पर्वत यही है। दो वर्ष पहले यह जानकारी सामने आई, किन्तु प्रमाण अब मिल रहे हैं।

ओशनोलॉजी डिपार्टमेंट ने वेबसाइट पर लगभग 50 मिनट का एक वीडियो जारी किया है। इसमें पिंजरत गांव के समुद्र से दक्षिण में 125 किलोमीटर दूर 800 मीटर की गहराई में समुद्र मंथन के पर्वत मिलने की बात भी कही है। वीडियो में द्वारकानगरी के अवशेष की भी जानकारी है। इसके अलावा वेबसाइट पर प्राचीन द्वारका के आलेख में ओशनोलॉजी डिपार्टमेंट द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है।

आर्कियोलॉजी डिपार्टमेंट ने सबसे पहले अलग-अलग टेस्ट किए। इनसे साफ हुआ कि पर्वत पर नजर आ रहे निशान जलतरंगों के कारण नहीं पड़े हैं। तत्पश्चात, एब्स्यूलूट मैथड, रिलेटिव मैथड, रिटन मार्कर्स, एज इक्वीवेलंट स्ट्रेटग्राफिक मार्कर्स एवं स्ट्रेटिग्राफिक रिलेशनशिप्स मैथड तथा लिटरेचर व रेफरेंसेज़ का भी सहारा लिया गया।

आर्कियोलॉजिस्ट मितुल त्रिवेदी के बताए अनुसार यू-ट्यूब पर ओशनोलॉजी विभाग ने 50 मिनट का एक वीडियो अपलोड किया है। इसमें विभाग ने पिंजरत के पास 125 किमी दूर समुद्र में 800 फुट नीचे द्वारका नगरी के अवशेषों के साथ मन्दराचल पर्वत की भी खोज की है। ओशनोलॉजी की वेबसाइट पर आर्टिकल में विभाग द्वारा इस बात की पुष्टि कर दी गई है।

द्वारका नगरी के निकट ही देवताओं और राक्षसों ने अमृत की प्राप्ति के लिए समुद्र मंथन किया था। इस मंथन के लिए मंदराचल पर्वत का

उपयोग किया था। समुद्र मंथन के दौरान विष भी निकला था, जिसे महादेव शिव ने ग्रहण कर लिया था और शिव 'नीलकंठ' हो गए।

पहचान को लेकर विवाद

गुजरात में समुद्र के नीचे पाए गए एक बड़े ग्रेनाइट चट्टान की मंदार पर्वत जैसी प्रकृति होने के कारण इसे आर्किओलॉजिकल और ओशनोलॉजी डिपार्टमेंट द्वारा पौराणिक 'मंदार' होने की पुष्टि करने से विद्वानों में काफी विवाद है।

अंगक्षेत्र की भाषा अंगिका के विद्वान व दर्जनों पुस्तकों के लेखक डॉ. अमरेंद्र इसे विवादों में रहने की एक चाल मानते हैं। वे कहते हैं कि मंदार सदृश एक चट्टान के मिलने भर से ही मंदार कह देना सही नहीं है। मंदार साबित करने के लिए ग्रेनाइट की एजिंग ही काफी नहीं है। ये सवाल उठाते हैं कि मिथक के अनुसार मंदार को समुद्र में डूबने से बचाने के लिए मंथन किया गया था, फिर मंदार पर्वत समुद्र के नीचे कैसे चला गया?

पौराणिक मंदार के जानकार श्री फतेह बहादुर सिंह 'पन्ना' का इस आलोक में कहना है कि अगर मान भी लिया जाए कि वह 'मंदार पर्वत' ही है तो इसके और भी प्रमाण होने चाहिए। सिर्फ मंदार जैसी संरचना होने से ही समुद्र के एक बड़े ग्रेनाइट चट्टान को 'मंदार' कैसे मान लिया जाए? क्या वहां मंदिरों और तलाबों के अवशेष पाए गए?

क्या इंद्र की बसाई हुई बालीसा नगरी के अवशेष वहां हैं? अगर नहीं, तो इतनी आसानी से कैसे किसी मान्यता को ध्वस्त या स्थापित किया जा सकता है?

इस मुद्दे पर सामाजिक संस्था 'मंदार विकास परिषद' के उदय शंकर झा 'चंचल' सवाल उठाते हैं कि परंपरागत ढंग से मान्य संस्कारों में जिस मंदार का जिक्र यहां की सभी स्थानीय जातियों-जन जातियों में है वह अन्यत्र कैसे हो सकता है? यहां की जनजातियों के लिए यही मंदार बुरू (पर्वत) है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कारों में आ रहा है। प्राचीन काल से संस्कारों में, गीतों में रहे इस मंदार को 'मंदार जैसी कोई प्रचारित संरचना' भला कैसे क्षणिक पुष्टि कर सकती है? इनका कहना है कि विष्णु पुराण में जिस मंदार की पहचान के लिए 'चीर' और 'चांदन' नदी के जिक्र हैं वे पहचान क्या समुद्र में मिली उस संरचना के साथ भी है? गजेटियर, सर्वे और पुराने कागज़ातों में जिसका वर्णन है, वह मंदार कहीं और होने के दावे को ये खारिज़ करते है। इस आशय में इन्होंने उपरोक्त दोनों विभागों को पत्र लिखकर भ्रमित न करने का अनुरोध किया है। इस आशय में उन्होंने विष्णु पुराण और स्कंद पुराण के श्लोकों का हवाला भी दिए हैं :

चीर चान्दनयोर्मध्ये
मंदारो नाम पर्वतः।
तस्यारोहण मात्रेण
नरो नारायणो भवेत्।।

अर्थात, चीर और चांदन के मध्य मंदार नाम का पर्वत अवस्थित है, उस पर आरोहण करने वाले मनुष्य को देवत्व प्राप्त होता है।

भागीरथ्याः परेपारे
दक्षिणस्याम् महामते ।
अंग देशे सुविख्यातो,
मंदारः पर्वतोत्तमः।।

अर्थात, भागीरथी यानी गंगा के उस पार में दक्षिण की ओर विख्यात अंग देश में मंदार पर्वत सबसे उत्तम है।

श्री चंचल कहते हैं कि समुद्र के नीचे भी नदियों के अवशेष मिलने के कई प्रमाण हैं तो क्या चीर और चांदन नदी के अवशेष गुजरात के समुद्र के नीचे भी प्राप्त हुए हैं? गंगा के दक्षिण में अंग प्रदेश में मंदार अवस्थित है। बांका जिले का मंदार पर्वत इन दोनों आर्हताओं को पूरा करता है लेकिन क्या गुजरात में समुद्र के नीचे पाया गया मंदार इसे पूरा करता है। ओशनोलोजी और आर्कियोलोजी विभाग को इसे भी साबित करना होगा, जो कि टेढ़ी खीर है।

उपरोक्त विद्वानों ने कई और विंदुओं पर प्रश्नचिह्न खड़े किए जिन्हें साबित करने के लिए उनके माथे पर बल पड़ना स्वाभाविक है। और यहां, जो सबसे बड़ी बात है वो है लोक-मान्यताओं को कोई भी व्यक्ति या संस्था झुठला नहीं सकते हैं। शास्त्र के आधार पर मंदार की पहचान, मंदिरों-मठों के अवशेष, तलाबों व आसपास की आबादी या पुराने नगरों की उपस्थिति के अवशेष और लोक-साहित्य भी काफी मायने रखते हैं।

> **मंदार को समुद्र में डूबने से बचाने के लिए मंथन किया गया था, फिर मंदार पर्वत समुद्र के नीचे कैसे चला गया?**

संताली लोकगीतों में जीवंत

मंदार

पद्मश्री चित्तू टूडू

लोकगीत वस्तुतः किसी भी समाज के जनमानस का आइना होता है। सदियों से अनाम-अनजाने कंठों में रचे-बसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी को सहज परंपरागत ढंग से हस्तांतरित होनेवाले इन गीतों में लोकमानस के हर्ष-उल्लास, आशा-आकांक्षा, कुंठा-संत्रास आदि मनोभावों की कल्पना युक्त सरस अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

तथाकथित आधुनिकता और दूसरों की नक़ल करने की दौड़ में आज हमने 'पुरातन' खो दिया है। किन्तु, वर्तमान परिवेश में जब हम अपनी परंपरागत साहित्य या संस्कृति की बात करते हैं तो लोक जगत हमें अपनी ओर खींचता है। यदि आदिवासी लोक-साहित्य की तरफ मुखातिब हों तो यह खिंचाव कुछ ज्यादा ही चुम्बकीय महसूस होता है।

संताल आदिवासी बिहार और झारखंड राज्यों की प्रमुख जनजातियों में से एक है। संताल परगना प्रमंडल के अतिरिक्त बांका, भागलपुर, मुंगेर, जमुई, कटिहार, पूर्णिया, गिरिडीह, धनबाद, पूर्वी और पश्चिमी सिंहभूम जिले में संताली लोग बसे हुए हैं। बिहार, झारखंड के अलावे पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम, मेघालय, मिजोरम, आदि राज्यों तथा पड़ोसी देश नेपाल और बांग्लादेश के दिनाजपुर जिले में इसकी आबादी देखी जा सकती है।

> तथाकथित आधुनिकता और दूसरों की नक़ल करने की दौड़ में आज हमने 'पुरातन' खो दिया है। किंतु, वर्तमान परिवेश में जब हम अपनी परंपरागत साहित्य या संस्कृति की बात करते हैं तो लोक-जगत हमें अपनी ओर खींचता है। यदि आदिवासी लोक-साहित्य की तरफ मुखातिब हों तो यह खिंचाव कुछ ज्यादा ही चुम्बकीय महसूस होता है।

संताल जनजाति का कोई लिखित इतिहास नहीं है परंतु इनके बीच प्रचलित रीति-रिवाज़ों, लोक मान्यताओं और साहित्य में परंपरागत ढंग से ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित हैं।

प्रसिद्ध मंदार पर्वत की महिमा युगों से इनके सामाजिक आचार-व्यवहार, संस्कृति और लोक गीतों में भरे पड़े हैं। संतालों में प्रचलित परंपरानुसार जब कोई छोटा अपने से बड़े को प्रणाम करता है तो आशीर्वाद स्वरूप वे बच्चों को कहते हैं "मंदार बुरु लेका जीवी हारा कोक ताम मा" जिसका अर्थ है- मंदार की तरह लंबी उम्र जियो और विशाल बनो।

इनके बापला (विवाह), पर्व-त्योहारों, विभिन्न संस्कारों एवं अन्य पारंपरिक गीतों में अधिकतर मंदार पर्वत की महिमा का वर्णन मिलता है. तो आइये ऐसे कुछ उदाहरणों को देखते हैं-

मंदार बुरू चोट खोन
तोवा नातुक कान जिरी-हिरी ।
आम गेचों मरांग दादा जोतो खोनेम
तोवा नातुक कान जेम्बेदोक में ।।

अर्थात, मंदार पर्वत के ऊपर से झर-झर बह रहा है दूध का झरना। भैया हम सब में आप ही सबसे बड़े हैं, दूध पीने के लिए आप ही सबसे पहले मुंह लगाएं।

मंदार बुरु को सेंदायेदा
शिकारिया बेन तायनोम एना
आबेन दो शिकारिया नोंडे बाड़े
ताहेन बेन, माराक लिबाय-लेबोय
दाक कीन जूंया.

अर्थात, मंदार पर्वत पर शिकार करने के लिए सभी शिकारी चले गए हैं पर तुम दोनों पीछे छूट गए हो। अब तुम दोनों यहीं पर रुक जाओ। झूमते हुए मोर का जोड़ा पानी पीने के लिए अब यहीं आने वाला है।

मंदार बुरु चोट रे
आड़ी जोतोन तेञ डाडी आकात
ओले सेपे उमातिञ बोडेयापे
गातेञ ए उमातिञ बोडेयापे
गातेञ ए उमातिञ लोलो सितुंग।

अर्थात, मंदार पर्वत के ऊपर बड़े यत्न से मैंने एक चुआं बनाया है। उसमें स्नान कर उसे कोई गंदा मत करना। उस पानी में मेरी प्रेमिका धूप में स्नान करेगी।

सोहराय पर्व के
पहले दिन का नृत्य

मंदार बुरु चोट रे
कोल बादोली मोयरा कुड़ी
बिन रोड़ लांदा, तेगे लांदा
लेकाय ञेलोक कान
कोल बादोली मोयरा कुड़ी।

अर्थात, मंदार पहाड़ की चोटी पर एक मोयरा युवती कोयल की तरह हंस रही है। वह मोयरा युवती कोयल की तरह बिना हंसी के ही हंसने की तरह लग रही है। (मोयरा एक जाति है।)

मंदार बुरु चोट खोन
पिंचार माराक कीन उडावेना
पिंचार माराक दोकीन बांग काना
जुरी कुड़ी याक साड़ी ओरांगोक कान।

अर्थात, देखो! मंदार पर्वत की चोटी से उड़ गया वो सुन्दर पंखवाला मोर का जोड़ा। वह मोर पंछी का जोड़ा नहीं, लगता है कि दो युवतियां अपनी साड़ियां लहरा रही हैं।

मंदार पर्वत संतालों के लिए आस्था का प्रतीक है। इनके गीत सिर्फ मनोरंजन के लिए ही नहीं हैं बल्कि इससे यह पता चलता है कि इन वनवासियों का मंदार से आत्मिक लगाव रहा है जो इस क्षेत्र में भी कहीं और देखने को नहीं मिलता है। हमें इसे भी ध्यान में रखना चाहिए कि पुरातात्विक अवशेषों की तरह लोकगीत भी इतिहास को खंगालने में मदद कर सकते हैं।

मंदार बुरु चोट रे
आड़ी कुचित रे सोनोत बाहा
दारेञ देजोक रेमा डार
जानुम जांगाञ रोगोक कान।

अर्थात, मंदार पर्वत की चोटी पर सोनोत के फूल खिले हैं। ये बड़े ही कठिन स्थान पर हैं। जब फूल तोड़ने जाती हूं तो मेरे पैर में कांटे चुभ जाते हैं। हाय! कैसे तोड़ूंगी उस सोनोत के फूल को?

संताल जनजाति का सबसे महान पर्व 'सोहराय' (वन्दना) है. इस अवसर पर गाए जानेवाले सोहराय लोकगीतों में मंदार पर्वत का वर्णन कुछ इस प्रकार मिलता है-

मंदार बुरु दो दायना
होरा से डाहारा ना दाय
रामे-लखन झाम-झाम कीन
देजोक-फेडोक कान ना दाय।
होर हो दाय होर गेया
डाहार हो दाय डाहार गेया
रामे-लखन झाम-झाम कीन
देजोक-फेडोक कान ना दाय।।

अर्थात, ओ दीदी! मंदार पर्वत में सड़क या रास्ता है या नहीं? राम-लक्ष्मण झूमते हुए चढ़ते और उतरते हैं।

बहन! मंदार पर्वत के ऊपर से नीचे उतरने के लिए सड़क बने हुए हैं। उसी सड़क से राम-लक्ष्मण झूमते हुए आते-जाते हैं।

मंदार बुरु देजोक-फेडोक
दाहड़ी मैरी ञूरेन तीञ
सेदाय लेका हित पीरित
बानुक लांगा मैरी
दाहड़ी मैरी ओहोञ हालांग ले।

अर्थात, ओ प्रियतमा! मंदार पर्वत पर चढ़ने-उतरने में मेरी पगड़ी गिर गई है। थोड़ा, उसे उठा देना तो!

नहीं प्रियतम, नहीं उठाऊंगी। हमदोनों में अब पहले जैसी दोस्ती नहीं रही है।

मंदार बुरु देजोक-फेडोक
दाक दो दायना तेतांग किदींञ
दाक दो दायना तोका रेलांग यूंञ।
होड़ लेबेत बोडे दाक दो दाय
बालांग यूंञ दाय।
आलांग-तेतांग डाडिया, ना दाय
रिला-माला-सितिञ दाक लांग यूंञर!
रिला-माला-सितिञ
दाक तेलांग यूंञ जियाड़ोक।।

अर्थात, दीदी मंदार पर्वत पर चढ़ने-उतरने में मुझे प्यास लग गई है। दीदी बताओ, मैं पानी कहां पियूं?

बहन, लोगों के आने-जाने से पानी गंदा हो गया है। उसे नहीं पियेंगे। दोनों मिलकर मंदार पर्वत पर चुआं बनायेंगे। उससे स्वच्छ निर्मल जल निकलेगा। उसी को हम दोनों पियेंगे।

सीता नाला दाक दो दाय
फारया वासे वोड़े गेया दाय
सीता कापरा कीन
उम नाड़कान कान ना दाय
सीता नाला दाक दो दायना
रिला माला साफ़ा मेनाक
सीता कापरा कीन
उम नाड़कान कान ना दाय।

अर्थात, दीदी बताओ! सीता कुंड का पानी साफ़ है या गंदा? उस जल में सीता और कापरा स्नान कर रही है।

बहन! सीता कुंड का जल बिलकुल ही स्वच्छ और निर्मल है इसलिए सीता और कापरा स्नान कर रही है।

(संताल जनश्रुति में सीता और कापरा बहनें हैं।)

गातेञ तिरयोय ओरोंग मंदार बुरु रे
इञ दोंञ नातेन बाड़ाय दाक लो घाट रे
कान्डांग बागियाक रेमा होड़को ञेलेञ कान
बाञ सेनोक रेमा गातेञ ए रूहादीञ
होड़ रोड़ दोरेञ सहाव गेया रे
गातेञ नेगेर दो तोहोञ सहावले।

अर्थात, मंदार पर्वत पर मेरे प्रियतम बांसुरी बजा रहे हैं। मैं पनघट से सुन रही हूं। यदि मैं पनघट पर घड़ा छोड़ के जाती हूं तो लोग क्या कहेंगे? ये तुम्हारे लिए भी बड़ी लज्जा की बात होगी।

मंदार पर्वत संतालों के लिए आस्था का प्रतीक है। इसे ये शिवलिंग की तरह पूजते हैं। शिव 'मारांग बुरू' और मंदार 'मंदार बुरू' हैं। इनके गीत सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं हैं बल्कि यह बताने के लिए भी हैं कि वनवासियों की तरह मंदार से आत्मिक लगाव इस क्षेत्र में भी कहीं और देखने को नहीं मिलता है। इसे भी ध्यान में रखना चाहिए कि पुरातात्विक अवशेषों की तरह लोकगीत भी इतिहास को खंगालने में मदद कर सकते हैं।

भगवान मधुसूदन तो विष्णु का ही एक रूप हैं। कहते हैं कि मधु नामक दैत्य का वध करने के बाद विष्णुजी मधुसूदन कहलाए। किंवदंती है कि मधु का वध करने के बाद उन्होंने उसके सिर पर मंदराचल को रखकर अपने पैर से इस पर्वत को दबाए रखा। इसी कारण से मंदार पर्वत के सबसे ऊपर वाले मंदिर में पहले भगवान मधुसूदन का ही मंदिर बनाया गया था जिसे अब जैनियों ने यहां के ज़मींदारों से पट्टे पर लेकर अब एकाधिकार जमा लिया है।

सन 1573 के बाद जब मंदार पर काला पहाड़ का आक्रमण हुआ तब से भगवान मधुसूदन को बौंसी में स्थापित कर दिया गया और पर्वत के शिखर के मंदिरों में इनके चरण चिह्नों की पूजा की जाने लगी। इधर कुछ वर्षों पूर्व जैनियों ने इन मंदिरों पर आधिपत्य जमाने के बाद सभी पौराणिक-ऐतिहासिक अवशेष हटा दिए। यहां तक कि मंदिर की संरचना में भी छेड़छाड़ की गई।

भगवान मधुसूदन के बौंसी में स्थापित किए जाने के बाद कुछ परम्पराएं डाली गईं जिनमें उनका मकर संक्रांति के अवसर पर मंदार की तलहटी में अवस्थित फगडोल पर जाना भी तय हुआ और रथयात्रा के अवसर पर नई बालिसा नगरी अर्थात बौंसी बाज़ार तक आना भी। इन दोनों परम्पराओं को निभाने के लिए तब के राजाओं-ज़मींदारों की ओर से हाथी और रथ का प्रबंध किए जाने की परंपरा थी।

पहले, लकड़ी और लोहे के हाल चढ़े पहियों से बने दो मंजिला रथ को तैयार किया गया था। इसमें बगडुम्बा ड्योढ़ी का काफी योगदान था। कहते हैं, हाल के कुछ वर्षों पहले तक हाथी से भगवान की सवारी मकर संक्रांति को मंदार तक जाती थी जिसकी व्यवस्था बगडुम्बा ड्योढ़ी के श्री अशोक सिंह करते थे। हाथी की अनुपलब्धता और बौंसी मेले के प्रशासनिक कब्जे के कारण इन्होंने अपना हाथ पीछे खींच लिया।

रथयात्रा के समय भगवान की सवारी रथ को श्रद्धालु-जन खींचते हुए बौंसी बाज़ार तक लाते थे और फिर वापस ले जाते थे। इस वक़्त काफी भीड़ रहती थी। आस-पड़ोस की आबादी इस परम्परा को देखने बौंसी में जमा होती थी। इस मौके पर बारिश जरुर होती और लोग इस पवित्र बारिश की हल्की फुहार में भींगकर खुद को धन्य समझते थे। कहते हैं कि भगवान जगन्नाथ ही मधुसूदन हैं, तो परम्पराएं तो वही रहेंगीं।

इस रथ की भी अपनी कहानी है।

सन 1996 की रथयात्रा के दौरान बौंसी बाज़ार जाने के क्रम में रेलवे क्रॉसिंग के नजदीक रथ के कुछ पहिये टूट गए। रथ को बाज़ार तक ले जाना मुश्किल था। किसी तरह से इसे खींचकर-जुगाड़ लगाकर मंदिर तक वापस लाया गया। श्री फ़तेह बहादुर सिंह 'पन्ना दा' एवं अन्य धर्मप्राण लोगों की सहायता से इस रथ की मरम्मती के बदले एक नया रथ बनाने के प्रस्ताव को मंजूरी मिली। निर्णय यह भी लिया गया कि नया रथ लकड़ी का नहीं बल्कि लोहे का होगा।

नए प्रस्ताव को मंजूरी व धन की व्यवस्था में काफी वक़्त निकल गया। सन 1997 में अगली रथयात्रा के 34 दिन शेष थे और भगवान के लिए अबतक कोई व्यवस्था नहीं हो पायी थी। ऐन मौके पर पंजवारा के प्रेमशंकर शर्मा को नए रथ के निर्माण का महती कार्य सौंपा गया। ज़रूरत की सभी

भगवान मधुसूदन का रथ

मिथिलेश कु. चौधरी

चीज़ें रांची से खरीदकर लाई गयीं और अपने 3 कारीगरों के साथ एड़ी-चोटी एक करके श्री शर्मा ने रथयात्रा के दिन सुबह तक इस रथ को पूरा कर दिया। इसमें 12 पहिये थे और इसे भी दो मंजिला तैयार किया गया था। सन 2015 में रथयात्रा से पूर्व इसमें 2 पहिये और जोड़ दिए जाने से यह 16 पहियों का हो गया है। अन्य 2 पहिये जोड़े जाने के पीछे यह तर्क था कि 12 पहिये मधुसूदन के रथ में जोड़ा जाना अशुभ है। इस रथ का एक-एक पहिया लगभग एक क्विंटल का है। रथ के आर्किटेक्चर की ज़िम्मेदारी भी श्री शर्मा ने बखूबी निभाई। हालांकि चुनौतियां कम नहीं थीं लेकिन हौसलों के सामने सदा इसे पस्त होता हुआ देखा गया है। यहां भी यही हुआ।

समय सदा बदलाव चाहता है। और, भगवान के रथ में भी बदलाव के लिए सोचा गया। इसी क्रम में पंडाटोला के श्री पटल झा की सक्रियता से भगवान की सवारी के लिए गरुड़-सदृश एक रथ बनाने का निर्णय लिया गया। इसके लिए पुरानी जीप की एक चेसिस खरीदी गई। अर्थाभाव के कारण यह चेसिस कई वर्षों तक प्रेमशंकर शर्मा के वर्कशॉप में पड़ी रही। इसपर एक दिन एक स्थानीय युवक राजीव ठाकुर की निगाह पड़ी और इस काम को पूरा कराने का जिम्मा उन्होंने उठा लिया। इसके लिए इन्होंने समाज के कुछ सक्रिय बुद्धिजीवियों व वरिष्ठ लोगों के साथ बैठकें कर इसे साकार देने की एक रूपरेखा तय की। रथ के तकनीकी पहलुओं पर प्रेमशंकर शर्मा व अन्य से चर्चा के बाद भगवान विष्णु के वाहन गरूड़ के रूप को बनाने के लिए भागलपुर के श्री गुड्डू मिस्त्री का चयन किया गया। श्री गुड्डू ने शीशम की लकड़ी को तराशकर बखूबी गरुड़ का रूप दिया। इसमें इस्पात के कुछ स्प्रिंग के प्रयोग किए गए जिससे गरुड़ के पंख हिलते-डुलते से प्रतीत हों।

जब यह संरचना पॉलिश की गई तो इसका स्वरुप और निखर गया। इसी वक़्त पुरानी जीप की उस चेसिस पर एक और नया रथ प्रेमशंकर शर्मा द्वारा तैयार किया जा रहा था। दो मंजिल का यह रथ भी तैयार किये जाने के बाद ढांचे में तय स्थान पर गरुड़ को स्थापित कर दिया गया। इस रथ को 30 दिनों में तीन मजदूरों की सहायता से तैयार किया गया। इस रथ को ट्रैक्टर की सहायता से संचालित किया जा सकता है।

तैयार होने के बाद इस रथ की छटा देखते ही बनती है। 2016 की रथयात्रा के वक़्त भगवान मधुसूदन की सवारी इसी से निकली। रास्ते पर चलते गरूड़ के पंख जब हिलते हैं तो लगता है कि ठाकुर मधुसूदन गरूड़ासीन होकर हवा में उड़ रहे हों। चूंकि ठाकुरजी का वाहन ही गरूड़ है इसलिए इसकी योजना सफल हुई।

अब ठाकुर मधुसूदनजी इसी रथ से हरवर्ष मंदार तक जायेंगे जिसे लोगों द्वारा खींचने की जरुरत नहीं पड़ेंगी।

भगवान के इन दोनों रथों को रखने के लिए अलग-अलग घर बने हैं। इन रथों को इन घरों से सिर्फ भगवान की यात्रा के वक़्त या फिर किसी प्रकार की तकनीकी दिक्कत या आवश्यक बदलाव के लिए वर्कशॉप तक ले जाने के लिए ही निकाला जाता है। बौंसी मेला के अवसर पर आम लोगों के दर्शनार्थ इसे रथ-घर के बाहर रखे जाने की योजना है।

स्कंदपुराण में

मंदार

निरंजन राणा

स्कंदजी ने अर्जुन से कहा -

कुंतीनंदन! सृष्टि से पहले यहां सब कुछ अव्यक्त एवं प्रकाश शून्य था। उस अव्याकृत अवस्था में प्रकृति और पुरुष- ये दो अजन्मा (जन्मरहित) एक दूसरे से मिल कर एक हुए, यह हम सुना करते हैं। तत्पश्चात अपने स्वरूपभूत स्वभाव और काल की प्रेरणा होने पर पुरुष के ईक्षण (सृष्टि विषयक संकल्प) से क्षोभ को प्राप्त हुई प्रकृति से महत्त्व की उत्पत्ति हुई। फिर महत्त्व में विकार आने पर अहंकार उत्पन्न हुआ। मुनियों ने उस अहंकार को सात्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का बताया है। तामस अहंकार से पांच तन्मात्राएं उत्पन्न हुई तथा उन तन्मात्राओं से पांच महाभूतों की उत्पत्ति हुई और रूप रसादि पांच विषय पांच महाभूतों के कार्य हैं। तैजस अर्थात राजस अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई। पूर्वोक्त 10 इन्द्रियों के देवता तथा 11वां मन सात्विक अहंकार से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा विद्वान पुरुषों का मत है। ये ही चौबीस तत्व पूर्व काल में उत्पन्न हुए, फिर परम पुरुष भगवान सदाशिव की दृष्टि पड़ने पर ये सभी तत्व बुलबुले के आकार में परिणत हो गए, उस बुलबुले से सुन्दर अंड उत्पन्न हुआ, जिसका परिमाण सौ कोटि योजन का है। इसी को 'ब्रह्माण्ड' कहते हैं।

ब्रह्माण्ड की आत्मा ब्रह्माजी हैं, उन्होंने इसके तीन विभाग किये- उर्ध्वभाग, मध्यभाग और अधोभाग। उर्ध्वभाग स्वर्ग है, उसमें देवता निवास करते हैं। मध्यभाग भूलोक है, इसमें मनुष्य रहते हैं। अधोभाग को पाताल कहते हैं, इसमें नाग और दैत्य निवास करते हैं। इनमें से एक-एक विभाग के पुनः सात-सात भाग ब्रह्मा जी ने किये हैं। जो सात पाताल, सात द्वीप और सात स्वर्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं।

पहले मैं सात द्वीपों का वर्णन करूंगा। उनकी कल्पना सुनो।

पृथ्वी के मध्य में जम्बूद्वीप है; इसका विस्तार एक लाख योजन है। जम्बूद्वीप की आकृति सूर्यमंडल के समान है। वह उतने ही बड़े खारे पानी के समुद्र से घिरा है। जम्बूद्वीप और क्षार समुद्र के बाद शाकद्वीप है, जिसका विस्तार जम्बूद्वीप से दुगुना है। वह अपने ही बराबर प्रमाण वाले क्षीर समुद्र से, उसके बाद उस से दुगुना बड़ा पुष्कर द्वीप है, जो दैत्यों के मदोन्मत्त कर देने वाले उतने ही बड़े सुरा समुद्र से घिरा हुआ है। उससे परे कुश द्वीप की स्थिति है, जो अपने से पहले द्वीप की अपेक्षा दुगुने विस्तार वाला है। कुशद्वीप को उतने ही बड़े विस्तार वाले दही के समुद्र ने घेर रखा है। उसके बाद क्रौंच नामक द्वीप है, जिसका विस्तार कुशद्वीप से दूना है, वह अपने ही समान विस्तार वाले घी के समुद्र से घिरा है। इसके बाद दुगुने विस्तार वाला शाल्मलि द्वीप है; जो इतने ही बड़े ईख के रस के समुद्र से घिरा हुआ है। उसके बाद उससे दुगुने विस्तार वाला गोमेद (प्लक्ष) नामक द्वीप है; जिसे उतने ही बड़े रमणीय स्वादिष्ट जल के समुद्र ने घेर रखा है।

अर्जुन! इस प्रकार सात द्वीपों और सात समुद्रों सहित पृथ्वी का विस्तार दो करोड़ पचास लाख तिरपन हजार योजन है। हमें इसे भी याद रखना चाहिए कि शुक्ल और कृष्ण पक्ष में समुद्र के जल की पांच सौ दस अंगुल की वृद्धि और क्षय देखे गए हैं।

उसके बाद दस करोड़ योजन तक सुवर्णमयी भूमि है; यह देवताओं की क्रीड़ा स्थली है। उसके बाद कंकड़ के समान गोल आकार वाला लोकालोक पर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। उस पर्वत के बाह्य भाग में भयंकर अन्धकार है, जिसकी ओर देखना भी कठिन है। वहां कोई और जीव जंतु नहीं रहते। वह अंधकार पूर्ण प्रदेश पैंतीस करोड़, उन्नीस लाख, चालीस हजार योजन तक फैला हुआ है। उसके बाद गर्भोदक सागर है, जिसका विस्तार सात समुद्रों के बराबर है। उसके बाद एक करोड़ योजन विस्तृत कड़ाह ब्रह्मा जी के अंडकटाह से ढका हुआ है।

ब्रह्माण्ड के मध्य में मेरु पर्वत है, उसकी दसों दिशाओं में पचास पचास योजन तक ब्रह्मांड का विस्तार जानना चाहिए। जम्बूद्वीप के मध्यभाग में मेरु पर्वत है, यह ऊपर से नीचे तक एक लाख योजन ऊंचा है। सोलह हजार योजन तो यह पृथ्वी के नीचे तक गया हुआ है और चौरासी हजार योजन पृथ्वी से ऊपर उसकी ऊंचाई है। मेरु के शिखर का विस्तार बत्तीस हजार योजन है। उसकी आकृति प्याले के समान है। वह पर्वत तीन शिखरों से युक्त है, उसके मध्य शिखर पर ब्रह्मा जी का निवास है, ईशान कोण में जो शिखर है, उस पर शंकर जी का स्थान है तथा नैऋत्य कोण के शिखर पर भगवान् विष्णु स्थित हैं।

मेरु पर्वत के चारों ओर चार विष्कंभ पर्वत माने गए हैं। पूर्व में मंदराचल, दक्षिण में गंधमादन, पश्चिम में सुपार्श्व तथा उत्तर में कुमुद नामक पर्वत है। इनके चार वन हैं जो पर्वतों के शिखर पर ही स्थित हैं। पूर्व में नंदन वन, दक्षिण में चैत्र रथ वन, पश्चिम में वैभ्राज वन और उत्तर में सर्वतोभद्र वन है। इन्हीं वनों में चार सरोवर भी हैं। पूर्व में अरुणोद सरोवर, दक्षिण में मान सरोवर, पश्चिम में शीतोद सरोवर तथा उत्तर में महाह्रद सरोवर है। ये विष्कंभ पर्वत पच्चीस-पच्चीस हजार योजन ऊंचे हैं। इनकी चौड़ाई भी हजार-हजार योजन है।

मेरुगिरी के दक्षिण में निषध, हेमकूट और हिमवान - ये तीन मर्यादा पर्वत हैं। इनकी लम्बाई एक लाख योजन और चौड़ाई दो हजार योजन मानी गयी है। मेरु के उत्तर में भी तीन मर्यादा पर्वत हैं - नील, श्वेत और शृंगवान। मेरु से पूर्व माल्यवान पर्वत है और मेरु के पश्चिम में गंधमादन पर्वत है। ये सभी पर्वत जम्बूद्वीप पर चारों ओर फैले हुए हैं। गंधमादन पर्वत पर जो जम्बू का वृक्ष है, उसके फल बड़े बड़े हाथियों के समान होते हैं। उस जम्बू के ही नाम पर इस द्वीप को जम्बू द्वीप कहते हैं।

करके घर से निकल गए और परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो गए, शेष सात द्वीपों में उन्होंने अपने सात पुत्रों को प्रतिष्ठित किया। राजा प्रियव्रत के ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र जम्बू द्वीप के अधिपति हुए। उनके नौ पुत्र जम्बू द्वीप के नौ खण्डों के स्वामी माने गए हैं, जिनके नाम उन्हीं के नामों के अनुसार इलावृत वर्ष, भद्राश्व वर्ष, केतुमाल वर्ष, कुरु वर्ष, हिरण्यमय वर्ष, रम्यक वर्ष, हरी वर्ष, किंपुरुष वर्ष और नाभि तथा कुरु वर्ष।

हिमालय से लेकर समुद्र के भू-भाग को ही नाभि खंड कहते हैं। नाभि और कुरु ये दोनों वर्ष

पूर्व काल में स्वायंभुव नाम से प्रसिद्ध एक मनु हुए हैं; वे ही आदि मनु और प्रजापति कहे गए हैं। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। राजा उत्तानपाद के पुत्र परम धर्मात्मा ध्रुवजी हुए, जिन्होंने भक्ति भाव से भगवान विष्णु की आराधना करके अविनाशी पद प्राप्त किया। राजर्षि प्रियव्रत के दस पुत्र हुए, जिनमें से तीन तो संन्यास ग्रहण

धनुष की आकृति वाले बताए गए हैं। नाभि के पुत्र ऋषभ हुए और ऋषभ से 'भरत' पैदा हुआ; जिनके कारण इस देश को भारतवर्ष भी कहते हैं।

अर्जुन! यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - चारों पुरुषार्थों का उपार्जन होता है। भारतवर्ष के सिवा अन्य सब द्वीपों और वर्षों में केवल भोग भूमि है।

मंदार
जहां अवतरित हुईं गंगा

परशुराम ठाकुर ब्रह्मवादी

गंगा की उद्‌गमस्थली की खोज के संबंध में अनेकों धर्मावलंबी खोजकर्ता एवं पर्यटनकर्ताओं ने अलग अलग ढंग से मनगढंत बातें लिखी हैं जो किसी भी वेद-पुराण के भौगोलिक भुवनाकोश से मेल नहीं खाते हैं। सन 1780 ई. के लगभग रेनल साहब ने एक पुस्तक 'मेमोरीज ऑफ़ अ मैप ऑफ़ हिन्दुस्तान' नाम से लिखी है। इसी मानचित्र से भारतीय विज्ञान दिग्भ्रमित हो गया। यह प्रयास अभी तक जारी है।

गंगा की उद्‌गमस्थली पर पंडित दयाशंकर जी दूबे का आलेख (कल्याण-गीता प्रेस, गोरखपुर) से अनुशीलन करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्होंने अपने आलेख में यह खुलासा किया है कि पुस्तक पढ़ने पर उसमें इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि गंगाजी का उद्‌गम स्थान वर्तमान गोमुख (मानसरोवर) मान लिया जाये। सर्वे विभाग की तत्कालीन खोज से भी इसका समर्थन नहीं होता है।

सर्वे विभाग के मेजर आस मेस्टन साहब का अनुमान है कि मानसरोवर के आसपास से करनाली नदी दक्षिण को जाकर घाघरा में और घाघरा अंत में गंगाजी में मिलती है। लेखक महोदय गंगा की उद्‌गमस्थली के बारे में लिखते हैं कि कई वर्षों से आवश्यक सामग्री इकट्ठी की जा रही है। परंतु मैं, अभी तक यह निश्चय नहीं कर पाया हूं कि गंगाजी का मूल उद्‌गम स्थान कहां है? लेखक महोदय आगे बयान करते हैं कि इस संबंध में मैंने एक पत्र भारत सरकार के सर्वे विभाग के डायरेक्टर को लिखा था। इस विभाग ने गत दो तीन वर्षों से गढ़वाल जिला और टिहरी राज्य की जांच और खोज करने का काम हाथ में लिया है। परंतु, वे भी गौमुख के आगे कुछ पता न लगा सके। इस विभाग के एक ऑफिसर मेजर आस मेस्टन ने गौमुख और कैलाश के आसपास का नक्शा मांगा था।

अलकनंदा, मंदाकिनी एवं धौली गंगा इत्यादि के वर्णन सहित मेरे पास भेजने की कृपा की है। यह नक्शा सर्वे विभाग की वर्तमान खोज के आधार पर बनाया गया है। इससे भी गंगा जी के असली उद्‌गम स्थान का पता नहीं लगता।

इतिहासकार एवं भूगोलवेत्ता दोनों ही इस दृष्टि से एकमत हैं कि प्राचीन समय का स्वर्ग कोई ऐसा स्थान होना चाहिए जहां लोगों का आना-जाना बिना किसी खास कठिनाई के होता रहा हो। जहां, भौतिक समृद्धि एवं आत्मिक विभूतियों की प्रचुरता हो। पौराणिक साहित्य में दशरथ, नारद, नहुष आदि के ऐसे अनगिनत कथानक है, जिनमें स्वर्ग जाना और वापस आना कुछ उसी तरह बताया गया है जैसे हमलोग सामान्य स्थानों पर बिना किसी खास कठिनाई के चले जाते हैं।

देवराज इंद्र की सहायता के लिए महाराज दशरथ अपना रथ लेकर उत्तर भाग से ही गए थे। मंदार हिमालय मेरू का उत्तर भाग वर्तमान भागलपुर का विस्तृत भू-भाग (मछली आकार का) में होने का प्रमाण बाल्मिकी रामायण में भी है और उस समय इन्द्र की राजधानी मंदार पर थी। यह पुराणों में स्पष्ट उल्लेख है। इसी तरह का आख्यान अर्जुन के बारे में भी है।

जब अर्जुन इन्द्र के यहां गए थे तो उर्वशी ने उन्हें सम्मोहित करने की कोशिश की थी जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। चंद्रमा और इन्द्र का मिलजुल कर ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्या से छल करना धरती पर ही संभव है।

यही मंदार हिमालय की स्वर्गभूमि एवं विश्व सभ्यता संस्कृति की मातृभूमि रही है। इस सत्य की स्वीकारोक्ति श्री साहनी ने 'मैन इन इवॉल्यूशन' एवं सर वाटर रैले ने 'द हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड' में की है।

इतिहासकार भी अब मानने लगे हैं कि आर्यों का आदि निवास हिमालय ही था। इसके भौगोलिक स्वरूप को ढूंढना हो तथा इतिहास को तलाशना हो तो वह किसी अन्य ग्रह में नहीं बल्कि इसी मंदार मेरू से त्रिकूट (देवघर) तक की शृंखलाओं में ढूंढना चाहिए जहां खगोल उत्पति से लेकर मूल लंका तक का इतिहास कैद है।

महाभारत में एक कथा है कि अर्जुन द्रोपदी से आग्रह करते हैं कि वह कोई उपहार मांग ले। उत्तर में संकोचपूर्ण स्वर में द्रोपदी कहती हैं कि मेरे लिए नंदन वर के पारिजात पुष्प ला दें जो जल में नहीं, पत्थरों में खिलते हैं। जिनका सौन्दर्य स्वर्गीय दिव्यता की अनुभूति करा देता है। कथा के अनुसार अर्जुन हिमालय पहुंचकर नंदन वन गए। उन्हें वहां के रक्षकों से युद्ध करना पड़ा, जहां से एक पारिजात पुष्प द्रोपदी के लिए ले आए। महाभारत जिस हिमालय के नंदन वन का उल्लेख करता है यह नंदन वन हवेली खड़गपुर के नंदन वन पहाड़ से लेकर देवघर के नंदन वन का क्षेत्र फिर देवघर से उड़ीसा तक का नंदन वन का क्षेत्र रहा है। उस समय वैद्यनाथ से भुवनेश्वर तक का क्षेत्र हिमाच्छादित था। उस समय की सभ्यताएं स्वर्गपुरी की सभ्यताएं थी। यही मूल भाग प्राग वैदिककालीन सभ्यता संस्कृति की मातृभूमि रही।

मंदार क्षेत्र में नाम-संकीर्तन के नित्यावतार महात्मा भोली बाबा

मनोज मिश्र

इस धरती पर जब भी धर्म और संस्कृति पर संकट छाया है, तब-तब ईश्वर किसी न किसी रूप में धरती पर आते हैं। कहते हैं कि बंगाल के नदिया जिले में पंडित जगन्नाथ मिश्र और शची के घर पैदा हुए गौरांग महाप्रभु कृष्ण और राधा के विचित्र और पवित्र प्रेम के साक्षात रूप थे। वे सन 1485 में पैदा हुए और 'नाम संकीर्तन' के लिए जाने गए। उन्होंने सम्पूर्ण भारत में हरि बोल की अलख जगाई।

सन 1505 में चैतन्य महाप्रभु ने मंदार की यात्रा की। कहा जाता है कि महातीर्थ गया जाने के क्रम में वे मंदार आए। यहाँ वे काफी बीमार पड़ गए। अपने अनुयायियों से उन्होंने कहा कि हल लेकर जो भी ब्राह्मण यहां से गुजरे वही मुझे चंगा कर सकता है। ऐसे ही एक ब्राह्मण का पांव धोकर उन्होंने पीया और पुनः प्रस्थान के लिए तैयार हो गए। तभी उन्होंने अपने भक्तों से कहा था कि इस मंदार की महिमा अपार है। आगे, मैं इसी मंदार क्षेत्र में पैदा हो रहा हूं और नाम संकीर्तन की परंपरा को आगे ले जाऊंगा।

> महात्मा भोली बाबा को कुछ लोग अंग्रेजों का भेदिया बताने लगे थे लेकिन जिसका चित्त ही राम में बसा हो उसे दुनियादारी कहां सूझती है भला! वे कहते थे कि मैं धर्म का हूं और मेरा लक्ष्य धार्मिक है। लौकिक धन इकठ्ठा करने का मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। पारलौकिक 'हरि बोल' ही सच्चा धन है। यही काया से ऊपर है।

वैष्णव परंपरा वाले इस मंदार क्षेत्र में महाप्रभु के आगमन के लगभग 400 वर्षों के बाद पंडित जहौरी मिश्र व मूर्ति देवी के घर बिहार के बांका जिले के बौंसी के फागा गाँव में एक बालक पैदा हुआ। छोटी उम्र में ही उनको चेचक हो गया। तब चेचक का प्रकोप भयंकर था और इससे बच्चों की मृत्यु भी हो जाती थी। गांव की मान्यताओं के अनुरूप माँ-बाप द्वारा उनको त्याग देने से मरने से बचाया जा सकता था। इसलिए उनको राख के ढेर पर फेंक दिया गया था। गौरांग महाप्रभु को भी चेचक की वज़ह से नीम के पेड़ के नीचे छोड़ दिया गया था, इसलिए वे निमाय कहलाए। यह महज़ संयोग हो सकता है, लेकिन इस संदर्भ में जीवन की कई ऐसी घटनाओं का मिलान किया जा सकता है। उदाहरण के लिए दोनों के पिता का नाम 'ज' अक्षर से शुरू होना और माताओं के नाम दो अक्षरों का होना आदि।

बचपन से उन्हें जाननेवाले कहते हैं कि 'खेपाहा' अर्थात 'क्षेपा' की तरह उनका व्यवहार था। स्वयं में अधिक खोये रहने के कारण लोग उनको यही कहते थे। इस स्वयं में खोने के दरम्यान वे 'हरि बोल' और और 'राम-राम' का उच्चारण किया करते थे। विवाद या लड़ाई-झगड़ा में उनकी रूचि नहीं थी।

वह वक़्त स्वतन्त्रता संग्राम का था और इनका पैतृक गाँव फागा अंग्रेज अफसरों के निशाने पर था। इनके चचेरे भाई भुवनेश्वर मिश्र बड़े विप्लवियों में शुमार थे और परशुराम सेना के मुख्य कर्ता-धर्ताओं में थे। एकबार अंग्रेजी फ़ौज इनका पूरा घर उजाड़ कर चली गई। उस वक़्त भी ये 'राम नाम' में खोये थे लेकिन इनको कोई फ़र्क नहीं पड़ा। ये बातें स्वयं भुवनेश्वर मिश्र ने बताई थी। तब कुछ लोग इनको अंग्रेजों का भेदिया भी बताने लगे थे। लेकिन जिसका चित्त ही राम में बसा हो उसे दुनियादारी कहां सूझती है भला! इनदिनों भी वे राम धुन और हरि बोल में लोगों के साथ रमे रहते थे। अष्टयाम-पैदल संकीर्तन और सनातन धर्म के प्रचार में लगे रहते थे। धर्मग्रंथों की चर्चा उसमें समाहित रहती थी। इसका ज्ञान उन्हें अपने पिता-माता से भी मिला था। वे कहते थे कि मैं धर्म का हूँ और मेरा लक्ष्य धार्मिक है। लौकिक धन इकठ्ठा करने का मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। पारलौकिक 'हरि बोल' ही सच्चा धन है। यही काया से ऊपर है।

पंडित जयानंद ठाकुर ने बांग्ला पुस्तक 'चैतन्य मंगल' में चैतन्य महाप्रभु के बारे में काफी कुछ लिखा है। इनमें दर्ज महाप्रभु का व्यवहार, जीवनाचार, पुनर्जन्म से इनका काफी व्यवहार मिलता है जिसे आज भी लोग आश्चर्यजनक मानते हैं। सनातन धर्म में अवतारों के संबंध में 4 मान्यताएं हैं। क्रमशः आवेशावतार,

प्रवेशावतार, प्रयोजनावतार और नित्यावतार। लोगों का दुःख दर्द सुनकर दुःख का अनुभव करना आवेशावतार कहा गया है। आवेश में आकर कुछ भी कह देना जो सच हो जाए उसे प्रवेशावतार कहा गया है। किसी प्रयोजन के लिए प्राणी का जन्म होना प्रयोजनावतार कहा गया है। और, गीता के श्लोक ''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम..'' के अनुसार धर्म की हानि के समय मानव रूप में अक्सर पैदा होने वाले जातक ही नित्यावतार हैं। कहते हैं, बाबा इन चारों के प्रतिनिधि पुरुष थे। यही स्थिति गौरांग महाप्रभु की भी थी।

घटना सन 1940 की है। बंगाल से एक विष्णु भक्त मंगल बाबू मंदार-मधुसूदन नगरी आये थे। यहां उनको पता चला कि नीमा नामक गांव में एक संकीर्तन मंडली है। मंगल बाबू वहां पहुंचे और कुछ धर्मप्राण बंधु-बांधवों से मुलाक़ात हुई। वहां उनको पता चला कि हरेक रविवार को यहाँ संकीर्तन के लिए लोग जुटते हैं। वे नियमित तौर पर हरेक रविवार को वहां आने लगे और पंडित जयानंद ठाकुर कृत 'चैतन्य मंगल' में उद्धृत महाप्रभु का गुणगान सुनाने लगे। वे गुणगान सुनाते फिर भजन में रम जाते। उनके साथ-साथ लोग भी भाव-विह्वल हो जाते थे।

श्री जड़बलाल झा वहीं के एक ग्रामवासी थे। वे फागा ग्राम में शिक्षक थे। इन्हीं दिनों उन्होंने अपने एक शिष्य के बारे में लोगों से जिक्र किया। इस दौरान उन्होंने उनके बाल व्यवहारों की चर्चा भी की जो लोगों को विचित्र भी लगता था लेकिन गौरांग महाप्रभु के आचरणों से मेल खाता था। बाबू मोशाय मंगल दादा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने लोगों को बताया कि महाप्रभु की चरितावली में यह चर्चा है कि मंदार क्षेत्र में उनका जन्म 400 वर्षों के उपरान्त होगा और नाम संकीर्तन और वैष्णव प्रचार का बीड़ा फिर उठाएंगे।

सन 1942 में एक दिन पंडित जड़बलाल झा संकीर्तन के लिए उनको लेकर नीमा आए। बालक भोली बाबा उस दिन गेरुआ वस्त्र पहने थे। रात में 'श्रीराम-सीता दरबार' का चित्रपट लगाकर कीर्तन शुरू हुआ। बाबा ने जब नाम संकीर्तन शुरू किया तो लोग भावविभोर होकर उनके साथ नाचने लगे। लोगों ने गौर किया तो बाबा रो-रोकर अपने इष्ट को पुकार रहे थे। वहां का 'हरि बोल' 'बोल हरि' में बदल गया था। लोग हरि की आवाज़ सुनने को व्याकुल हो रहे थे। बाबा स्वयं कह रहे थे, ''हे हरि, कहाँ हो? एक आवाज़ लगा दो मुझे!''

बाबा के इस भाव की व्यापक चर्चा हुई। लोग दर्शन कर उनके पांव छूने को उमड़ पड़े। इस बालक के भाव को लोगों ने 'दैविक' माना। उसी दिन से सुसुप्त पड़ चुके संकीर्तन की परम्परा समूचे मंदार क्षेत्र में फैलने लगी। इसी क्रम में संकीर्तन समाज का गठन हुआ। इसके अध्यक्ष पंडित संतलाल मिश्र बनाए गए। वे बैजानी, भागलपुर के निवासी थे और बौंसी में संस्कृत विद्यालय चलाते थे। श्री मिश्र ने ही 242 पृष्ठों वाला 'मंदार मधुसूदन महात्मय' लिखा था जिसमें 42 अध्याय थे। सदस्यों में गोविन्द घोष (लक्ष्मीपुर स्टेट के दीवान), सीतावरण पंडा, चंद्रशेखर ठाकुर, नारायण झा (चन्नू बथान), मैनेजर झा (डुमरिया), जड़बलाल झा (नीमा) प्रमुख थे। 'मधुसूदन संकीर्तन समाज' के नाम से एक मंडली तैयार की गई जिसका नेतृत्व मैनेजर झा के हाथ में था। प्रत्येक पूर्णिमा को मधुसूदन मंदिर में संकीर्तन का जिम्मा इन्हीं के हाथ में था। यह सब बाबा की प्रेरणा का ही प्रतिफल था। इन सबमें उनकी उपस्थिति होती थी।

सन 1943 में रात्रिकाल में मंदार पर्वत के नरसिंह भगवान के सामने चार प्रहर का अखंड होता था। बाबा इसमें उपस्थित रहते थे। बाबा की प्रेरणा से ही बगडुम्बा ड्योढ़ी के ज़मींदार मंदारेश्वर सिंह की अध्यक्षता में बनारस में श्री रूपकला संकीर्तन मंडली में संकीर्तन हुआ। सन 1946 में मंदार पर्वत की परिक्रमा की शुरुआत उन्होंने की. यह तीन बार की जाती थी. 14 जनवरी को मकर संक्रांति के अवसर पर परिक्रमा के साथ अखंड भी होता था। परिक्रमा और संकीर्तन की यह परम्परा अब भी इनके शिष्यों ने जारी रखी है। स्थानीय माधुरी गांव में बाबा के निर्देश पर ही सन 1948, 15 जनवरी से एक वर्ष का अखंड संकीर्तन शुरू किया गया। इस दौरान बाबा वहां पूरे वर्ष भर विराजमान रहे।

मंदार-मधुसूदन संकीर्तन समाज की ख्याति तब दूर-दूर तक फ़ैल रही थी और कीर्तन के प्रेमी लोग बौंसी आकर कीर्तन गाकर जाते और इस समाज को भी वहां आने का निमंत्रण देकर जाते थे। दूर प्रदेशों तक यह समाज बाबा के प्रयास से जाना जाने लगा। नाम संकीर्तन का यह बीज फूलकर धर्मप्राण भंवरों के जरिये दूर तक फैलता रहा और वैष्णव परम्परा को पल्लवित-पुष्पित करता रहा।

बाबा के बारे में स्थानीय इतिहासकार व मुरारका कॉलेज, सुल्तानगंज, भागलपुर के प्रिंसिपल डॉ. अभय कान्त चौधरी ने अपनी पुस्तक 'मंदार परिचय' में लिखा है- 'भगवन के प्रति एकाग्रता एवं तन्मयता इनमें इतनी अधिक है कि कीर्तन करते-करते ये अपने आप को भूल जाते हैं, इन्हें कुछ भी सुध-बुध नहीं रहती। इनकी आंखों से अविरल अश्रुधारा बहती रहती है और बहुत देर तक यह अवस्था बनी रहती है।' लोग कहते हैं, अश्रुपूरित नयन और 'हरि बोल' ही बाबा की पहचान थी। हरवक़्त वे मुस्कुराते और उनके नयन डबाडब रहते थे। 'कल्याण हो' उनका वाच्य था और यह जाति, वर्ण, लिंग और सभी सम्प्रदायों के लिए था। वे विश्व कल्याण के निमित्त ही थे।

अक्तूबर 1981 को बनारस में उन्होंने अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। धन संचय उनका उद्देश्य नहीं था। वे शिष्य बढ़ाने में यकीन नहीं रखते थे। उन्होंने कुछ ही लोगों को दीक्षा दी। माधुरी ग्राम के रहनेवाले पेशे से अभियंता युवक अविनाश बताते हैं कि किसी चाहनेवाले के घर अगर वे अपनी फोटो देख लेते थे तो नाराजगी व्यक्त करते थे। वह फोटो वहां से वह हटवा देते थे। ''परहित सरिस धरम नहिं भाई...'' की परंपरा के इस संत की विचारधारा व्यक्तिपूजा की नहीं थी। राम और कृष्ण इनके लिए अवतार थे। अपना मंदिर और मठ बनाना इन्हें पसंद नहीं था मगर संत की परम्परा को जीवंत रखने के उद्देश्य से इनके शिष्यों ने इनकी एक प्रतिमा इनके आश्रम में लगाई है। यह आश्रम ठाकुर मधुसूदन मंदिर के समीप ही है, जिसे देश-विदेशों से आनेवाले इनकी परम्परा के संत और शिष्य संकीर्तन और प्रवचन से अक्सर परिपूर्ण करते रहते हैं। इनके शिष्यों में प्रवचनकर्ता श्री लक्ष्मण शरण और सियाजी भी हैं जो कुछ वर्षों से बौंसी में 'राम-सीता विवाह' का आयोजन कराती हैं।

मंदार मधुसूदन क्षेत्र से उठा बाबा के 'बोल हरि' का जयघोष आज भी सर्वत्र सुनने को मिलते हैं। जहां भी लोग कीर्तन के दौरान ''हरि बोल हरि...'' का जयकारा लगाते हैं बरबस उन्हें जाननेवालों के मुंह से ये स्वर निकल जाते हैं कि महात्मा भोली बाबा अमर हैं।

क्रिया योग का दीक्षापीठ

गुरुधाम

हरिनारायण सिंह

योगिराज भूपेन्द्र नाथ सान्याल जेडिथ संत थे। दुनिया की प्राचीन पुस्तक 'वेद' और वैदिक परंपराओं में उनकी आस्था थी। श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय इनके गुरु थे जिनके आदेश से इन्होंने अपने गुरु की परंपराओं को आगे बढ़ाया। बौंसी का गुरुधाम इसी की कड़ी है।

स्वामी परमहंस योगानंद द्वारा लिखित 'ऑटोबायग्राफी ऑफ अ योगी' को भला कौन नहीं जानता होगा! यह, किसी योगी द्वारा लिखित सर्वाधिक बिक्री वाली किताबों में एक है। वे, स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि के शिष्य थे और श्री युक्तेश्वर योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य थे। यहां ऐसा कहा जा सकता है कि श्री युक्तेश्वर गिरी और सान्याल महाशय गुरुभाई थे। ये सभी क्रियायोगी थे। स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि ने 'द होली साइंस' लिखा था जो आज भी काफी प्रासंगिक है। अंग्रेजी में उपलब्ध इस पुस्तक को पश्चिम में काफी पढ़ा गया और पसंद किया गया।

कहते हैं कि शिर्डी के साईं बाबा के गुरु भी श्यामाचरण लाहिड़ी थे। एक पुस्तक 'पुराण पुरुष योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी' में इसका उल्लेख मिलता है। इस पुस्तक को लाहिड़ीजी के सुपौत्र सत्यचरण लाहिड़ी ने अपने दादाजी की हस्तलिखित डायरियों के आधार पर डॉ. अशोक कुमार चट्टोपाध्याय से बांग्ला भाषा में लिखवाया था। इसका हिंदी अनुवाद छविनाथ मिश्र ने किया था। इसमें कोई दो राय नहीं कि 'सबका मालिक एक' कहनेवाले साईं बाबा भी अपने धर्म का अक्षरसः पालन करते हुए सभी धर्मों का आदर जेडी संतों की तरह करते थे। यहां यह स्पष्ट है कि साईं भी इसी परंपरा के संत थे।

समुद्र मंथन का गवाह मंदार; सदियों से देवी-देवताओं, संत-योगियों के लिए सर्वोत्तम स्थलों में से एक रहा है। रामायण, महाभारत और विष्णु पुराण से अलग भी इसके कुछ लिखित-अलिखित आदर्श इतिहास हैं। नाथ-संप्रदाय के नाथों और नगाओं से भी यह क्षेत्र अछूता नहीं रहा। चंपा नगरी के राजकुमार वासुपूज्य ने इसी पर्वत के ऊपर तप किया और निर्वाण को प्राप्त हुए। कभी अंग महाजनपद तो कभी बंग साम्राज्य का हिस्सा रहे इस मंदार क्षेत्र में चैतन्य महाप्रभु का आगमन भी हुआ जिसकी चर्चा 'चैतन्यचरितावली' में है। यह भू-भाग महात्मा भोलीबाबा, महर्षि मेंहीं की साधना-भूमि भी रही। यहां उन्हें चैतन्य की प्राप्ति हुई और वे रम गए। आचार्य भूपेन्द्रनाथ सान्याल को अपने गुरु से अवचेतन में जब मंदार क्षेत्र में आश्रम बनाने का आदेश मिला तो उन्होंने अपने गुरुवर की याद में बौंसी-भागलपुर मुख्यमार्ग पर एक आश्रम बनाकर इसे भारतीय संस्कृति की परंपराओं को बनाए रखने के लिए सौंप दिया और गुरु-शिष्य परंपरा का निर्वाहन किया।

भागलपुर से 50 किलोमीटर की दूरी पर बौंसी स्थित है। इसी मार्ग पर बौंसी से डेढ़ किलोमीटर पहले सड़क की दाहिनी ओर एक पुराना लेकिन भव्य मुख्यद्वार है। यही गुरुधाम या आश्रम का मुख्य मार्ग है। मुख्यमार्ग से लगभग 200 मीटर दूर आश्रम है लेकिन गेट से चंद कदमों आगे ही बायीं ओर वेद और योगपीठ नजर आने लगता है जो आश्रम द्वारा संचालित है।

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के परम शिष्य आचार्य भूपेन्द्रनाथ सन्याल के द्वारा 1929 में इस आश्रम की स्थापना की गयी थी। मंदार पर्वत की तराई में आचार्यश्री ने योगनगरी को बसाया था। इसी परिसर में अपने परमगुरुदेव श्यामाचरण लाहिड़ी के इच्छानुसार एक मंदिर की स्थापना 1944 में की जो आज भी उसी रुप में विद्यमान है।

मंदिर के एक भाग में सान्याल बाबा ने अपने गुरु योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय की प्रतिमा स्थापित की, जबकि दूसरे भाग में शिव-पंचायतन की स्थापना की थी। यहां की व्यवस्था को सुचारू तरीके से चलाने के लिए गुरुधाम ट्रस्ट की स्थापना 1943 में की गयी जिसे बाद में 1948 में संशोधित किया गया। यहां के गुरुभाईयों की मानें तो इस आश्रम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य शिष्यों का नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना, यहां होने वाले धार्मिक उत्सवों में सेवा व्यवस्था देना सहित अन्य हैं। साथ ही सान्याल बाबा द्वारा रचित पुस्तकों का प्रकाशन करना भी है।
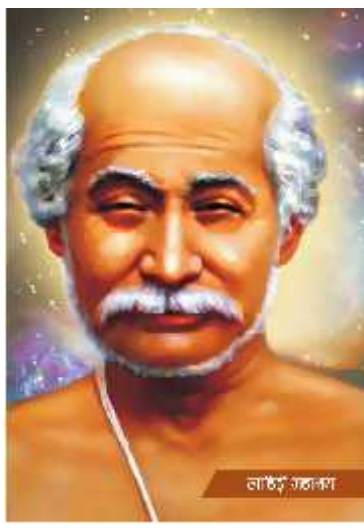
गुरुधाम आश्रम को क्रिया योग के प्रमुख केंद्र के तौर पर जाना जाता है। योग क्रिया की दीक्षा देने की परंपरा वर्षों पुरानी है। गुरुधाम आश्रम की स्थापना आचार्य श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल ने इसी उद्देश्य से की थी कि इस विद्या को जन-जन तक सूक्ष्म तरीके से पहुंचाया जा सके और अपने उद्देश्य में आचार्य सफल भी हुए।

भारत वर्ष में लाहिड़ी महाशय के शिष्यों द्वारा स्थापित आश्रमों में से गुरुधाम आश्रम सबसे महत्वपूर्ण है जहां पर क्रिया योग की दीक्षा दी जा रही है। आचार्य श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल जी के द्वारा एक अन्य आश्रम की स्थापना उड़ीसा के जगन्नाथ पुरी में वर्ष 1926 में की गई जो आज भी मौजूद है। ऐसा माना जाता है कि क्रिया योग राजा जनक, श्रीराम और संत कबीर जैसे मनीषियों ने भी किया था। आचार्य श्री सान्याल बाबा के अनुसार क्रियायोग तप और स्वाध्याय ही है। उन्होंने बताया है कि प्राणायाम और सद्ग्रंथ के पाठ से 'आत्म' का दर्शन होता है। आत्म की ओर जाना ही स्वाध्याय है।

इस आश्रम से क्रिया योग की दीक्षा लेकर काफी संख्या में वेदपाठी व योगी देश-विदेशों में इसका प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। सन 1943 से इस आश्रम में निरंतर क्रिया योग की दीक्षा दी जा रही है। यह पूर्णतः प्राचीन गुरुकुल परंपरा पर आधारित है।

'संस्कृत' देवभाषा कही जाती है जिनसे वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण जैसे शास्त्रों की रचना हुई है। ऋषि मुनियों ने वेद जैसे आर्ष साहित्य की रचनाओं को वैश्विक स्तर पर संरक्षण देने हेतु विभिन्न आश्रमों की स्थापना कीं, जहां संस्कृत माध्यम से सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक कर्मकांडों के सहारे शिक्षार्थियों को ज्ञान देना प्रारंभ किया। इसी कड़ी में बंगोत्कल योग विद्या से जुड़े महान साधक आचार्य भूपेन्द्रनाथ सन्याल ने मंदार क्षेत्र में परमयोगी अपने गुरुदेव व योग प्रवर्तक श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय की स्मृति में गुरुधाम आश्रम की स्थापना की एवं विरासत में मिली गुरु की कृपा से उन्होंने वेद-विद्या, योग एवं देव भाषा संस्कृत को जन-जन में फैलाने हेतु 'श्यामाचरण वेद विद्यापीठ' की स्थापना की। आज; तब का वह छोटा सा पौधा विशाल वट वृक्ष की भांति अपने उद्देश्य में प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

श्यामाचरण वेद विद्यापीठ में प्रथम कक्षा से वेद की पढ़ाई के साथ-साथ संस्कृत-डिग्री मध्यमा एवं शास्त्री के अध्ययन की व्यवस्था है। प्रथम कक्षा में वैसे छात्रों का नामांकन किया जाता है जो ब्रह्मचर्याश्रम के साथ-साथ यज्ञोपवित संस्कार एवं बटुक के रुप में सामवेद व यजुर्वेद की ऋचाओं का अभ्यास पाठ कर सके। ऐसे ही बटुकों को उत्तीर्णोपरांत क्रमशः मध्यमा और शास्त्री की कक्षाओं में प्रवेश दिया जाता है।

यहां पर वैदिक संस्कृति की तर्ज पर ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की गयी है जिसमें आठ से दस साल के बच्चों को चयनित कर वेद का अध्ययन-पारायण कराया जाता है। यह इसलिए किया गया ताकि देव भाषा संस्कृत व वेद की शिक्षा अगली पीढ़ी तक जा सके। यहां की मान्यता है कि संस्कृत अगर पठन-पाठन में रहे तो संस्कार स्वतः ही विकसित हो जाते हैं।

परमगुरुदेव लाहिड़ी महाशय के संप्रदाय में क्रिया योग को वैज्ञानिक पद्धति से सरलतम एवं व्यवहारिक रूप से उपदेशित किया जाता है जिसे अनुसरण करने वाले साधक दिन में दो बार सुबह-शाम करते हैं।

गुरुधाम आश्रम में प्रातः साढ़े चार बजे से आश्रम की दिनचर्या प्रारंभ हो जाती है। सुबह में मंगलाचरण का पाठ होता है। इसके बाद सात बजे मंगल आरती होती है जिसके बाद गुरुदेव की प्रतिमा को प्रसाद चढ़ाया जाता है। दोपहर में भोग लगाने के बाद प्रतिदिन काफी संख्या में गुरुभक्त प्रसाद ग्रहण करते हैं। दोपहर में मंदिर का पट बंद रहता है तीन बजे के बाद पुनः मंदिर में वेदपाठी बटुकों के द्वारा वेद-पाठ होता है। शाम में छह बजे आरती के बाद सत्संग होता है। यहां पर क्रियायोग का अभ्यास नितदिन किया जाता है। यहां क्रियायोग में अभ्यास पर काफी जोर दिया जाता है जो एक तरह से गुरु की अनुपालना है।

वर्तमान में आश्रम में गुरुद्वय आचार्य श्री प्रभात कुमार सान्याल एवं आचार्य श्री अमरनाथ तिवारी गुरुपद पर आसीन हैं जो गुरुभक्तों को अर्वाचीन वेद की सत्ता को सत्यानुचरण के लिए जीवन में उतारने की शिक्षा दे रहे हैं। इस आश्रम में साल में दो बार भव्य आयोजन होता है। इस कड़ी में वसंत पंचमी के अवसर पर पांच दिवसीय वसंतोत्सव का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर देश-विदेश के गुरुभाई-बहन यहां पहुंचते हैं। साथ ही, हजारों दरिद्रनारायणों को भोजन एवं वस्त्र दिया जाता है। दूसरा आयोजन गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर किया जाता है। इस अवसर पर भी हजारों शिष्य आश्रम में पहुंचते हैं और 'गुरु' से पल्लवित-पुष्पित होने का आशीष ग्रहण करते हैं।

मणियारपुर की वैश्विक अलख

महर्षि मेँहीँ धाम

डॉ. अवधेश कु. विश्वास

मणियारपुर का मनोरम पहाड़ी प्रांतर संत शाही स्वामीजी महाराज के पुनीत संकल्पों का कर्म-क्षेत्र है। यह मानव मात्र के आत्म-कल्याण की तपोभूमि है मणियारपुर का यह 'महर्षि मेँहीँ धाम।' प्रकृति के एकांतिक सुरम्य आंचल में आश्रम बनाने की दीर्घ परम्परा का निर्वाहन करता है -

श्रीजाबालदर्शनोपनिषद् (सामवेद का, खण्ड-5) में एतदर्थ निर्देश मिलता है -

पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले वनेऽथवा।
मनोरमे शुचौ देशे मठं कृत्वा समाहितः ।।

रामचरित मानस में भगवान श्रीरामजी वाल्मीकिजी के आश्रम की प्राकृतिक सुषमा देखकर मुदित हो गये। *श्रीबाल्मीकि मुनि का निवास स्थान* आश्रम निर्वाण की पृष्ठभूमि के लिये एक आदर्श निर्देश माना जा सकता है -

देखत बन सर सैल सुहाए।
बालमीकि आश्रम प्रभु आए ।।
राम दीख मुनि बासु सुहावन।
सुंदर गिरि कानन जलु पावन ।।
सरनि सरोज विटप बन फूले।
गुंजत मंजु मधुप रस भूले।
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं।
बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ।।

संतमत के संस्थापक आचार्य सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने 'महर्षि मेँहीँ धाम' तथा अन्य आश्रमों के निर्माण में इन्हीं परम्पराओं का निर्वाह किया है।

महर्षि मेँहीँ धाम बिहार राज्य के बाँका जिले के बौंसी प्रखंड में है। यह बिहार और झारखंड का सीमांत क्षेत्र है। यह मनोरम धाम बौंसी से लक्ष्मीपुर डैम तक जानेवाली सड़क पर लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। इसके आस-पास में पर्वत और वन हैं। ढलती शाम में हंसडीहा (दुमका) और मोहनपुर (देवघर) की पर्वतमालाओं की चोटियों पर धुंध की चादर, दूर-दूर तक ऊंची-नीची पहाड़ी भूमि, कहीं-कहीं फसल की हरियाली, लाल मिट्टी, चुभते कंकड़, बेतरतीब पहाड़ी पेड़-पौधे, बड़े-छोटे ताड़ और खजूर के पेड़ और तन-मन को तरोताजा करती सरसरी हवा। महर्षि मेँहीँ धाम के पूरब उत्तर दिशा में विशाल हरना बांध और उसकी बांहों में सिमटा बड़ा-सा जलाशय! रंग-बिरंगे पक्षियों के विभिन्न तरीके के कलरव, ताड़ की फुनगियों पर सूरज का पीला प्रकाश और जलाशय में हास भरती चिड़ियों के झुंड। प्रकृति की नयनाभिराम प्रस्तुति! प्राकृतिक अद्भुत दृश्य, शांत, एकांत और नैसर्गिक सौंदर्य मानव-मन को सहज ही अन्तर्मुखी बनाता हैं।

'महर्षि मेँहीँ धाम' की स्थापना के मूल में सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परहंसजी महाराज की महती कृपा परिलक्षित होती है। संतमत-सत्संग के प्रचार के लिए इनका पदार्पण अक्सर इस क्षेत्र में होता था। यहां की जीवनदायिनी जलवायु, नैसर्गिक सौंदर्य, रमणीय वातावरण से इनके अंतस्थल में आश्रम निर्माण की इच्छा जगी। संत की मौज के आगे प्रकृति और उसके चराचर जीव सभी विनयावनत हो जाते हैं। भक्तों के अन्दर सत्प्रेरणा उत्पन्न हुईं और उनके सद्प्रयास से आज से लगभग पचपन वर्ष पूर्व 22 सितम्बर 1961 को दलघट्टी, गोड्डा, झारखंड के स्व. महादेव पूर्वे और उनके पुत्र स्व. हरि पूर्वे ने 8 एकड़ 88 डिस्मल जमीन दानस्वरूप देने की कृपा की। स्थानीय सत्संगियों ने आपसी सहयोग से तब तीन कमरों का छोटा सत्संग मंदिर बनाया जिसमें सद्गुरु महाराज का निवास भी था। आज उसी स्थल पर विशाल सत्संग प्रशाल है। संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ ने 1980 ईस्वी में इसे विशेष रूप देने के उद्देश्य से सत्संग मंदिर का शिलान्यास चांदी की करनी से किया था और इस स्थान को सैनिटोरियम (स्वास्थ्यवर्द्धक) की संज्ञा दी थी अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में स्वास्थ्यवर्द्धन। आज उनकी कृपा से 'महर्षि मेँहीँ धाम' में लगभग 26 एकड़ जमीन है।

महर्षि मेँहीँ धाम पर पौराणिक तीर्थस्थल *'मंदार पर्वत' की महिमा का प्रभाव स्पष्ट* परिलक्षित होता है। मंदार पर्वत भारत के प्रमुख तीर्थों में से एक है। प्राचीन काल से ही यह संत महात्माओं, सिद्धों और विद्वानों का आश्रय स्थल रहा है। कहा जाता है कि समुद्र मंथन के समय मंदार पर्वत को मथानी बनाया गया था।

भारत वर्ष में चार धामों की चर्चा होती है- बद्रिका आश्रम, जगन्नाथ धाम, रामेश्वरम तथा द्वारिका धाम। वृंदावन धाम और केदारनाथ धाम भी उल्लेखनीय हैं। 'महर्षि मेँहीँ धाम' उन्हीं धामों की अद्यतन कड़ी है। यहां से एक ईश्वर की मान्यता पर ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर भक्ति का प्रचार किया जाता है। इन धर्मिक स्थानों के नाम के अंत में 'धाम' शब्द लगने के कारण संत शाही स्वामीजी महाराज के द्वारा इस स्थान का नाम भी 'महर्षि मेँहीँ धाम' रखा गया। इसके आसपास बैद्यनाथ धाम, बासुकीनाथ धाम, गोनू धाम, मधुसूदन धाम, गुरु धाम जैसे पवित्र स्थल हैं।

'महर्षि मेँहीँ धाम' परिसर में स्थित 'संत शाही निवास' कलात्मक सौंदर्य का एक अद्भुत नमूना है। इस भवन का बरामदा प्रदक्षिणा-पथ है। इसी परिसर में एक कुआं है, जिसका जल अति स्वादिष्ट और मृदु था। आश्रम में निवास के समय महर्षि मेँहीँ जी इसी जल का उपयोग करते थे और भक्तों से इस कुएं के जल की प्रशंसा भी करते थे। कुप्पाघाट आश्रम या अन्यत्र कहीं भी निवास के क्रम में वे इसी कुएं का जल मंगाकर उपयोग में लाते थे। आज इस कुएं को यथावत सुरक्षित रखा गया है। उस कुएं की दीर्घकालीन सुरक्षा के लिये काम किया जा रहा है।

'संत शाही निवास' के दक्षिण में संत रामलगनजी महाराज की समाधि है जिसकी श्वेत आभा उनकी गुरु भक्ति और उनके अकलुषित जीवन-चरित्र को प्रतिभाशित करती है। इसके उत्तर में विशाल 'संत शाही समाधि मंदिर' है, जिसका शिलान्यास महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष ब्रह्मलीन पूज्य श्री हुलास चंद्र रूँगटाजी ने किया था। समाधि मंदिर का विशाल गुंबद उन्मुक्त आकाश में संत शाही स्वामीजी के त्याग, तपस्या, गुरु-भक्ति और लोकमंगल के लिये आत्मोत्सर्ग की अध्यात्मिक कीर्ति-गाथा समस्त दिशाओं में फैला रहा है। इस समाधि मंदिर का भूमिगत विशाल गोलाकार ध्यान-प्रशाल धर्मिक संस्थाओं के लिये एक आदर्श है। इसके मध्य-भाग में संत शाही स्वामीजी की समाधि है, जहां उनके पूत शरीर का अंतिम संस्कार किया गया था। इसके ऊपरी मंजिल पर संग्रहालय का निर्माण किया जा रहा है। संपूर्ण समाधि मंदिर को मकराना के सुंदर पत्थरों से आवेष्ठित कर सजाया जा रहा है।

जा रहा है। इस 'समाधि मंदिर' में एक हजार साधक एक साथ ध्यान कर सकते हैं।

'संत शाही निवास' के पूरब 'गुरु-निवास मंदिर' में पांच कमरे हैं। गुरु-निवास कक्ष में सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंसजी का 'अस्थि-कलश' स्थापित है जहां उन्हें सिंहासन पर विराजित किया गया है। इसके पश्चिम-उत्तर दिशा में भोजनालय, उत्तर-पूरब दिशा में 'संत शाही गोशाला' एवं 'संत शाही अन्नपूर्णा', पूरब-दक्षिण में महर्षि मेंहीं हृदय गुफा, पश्चिम-दक्षिण में विशाल सत्संग प्रशाल और पूरब दिशा में चार खण्डों में निर्मित ध्यान-शिविर और विशाल आम्रवाटिका आश्रम को गरिमा मंडित करता है। सन् 1990 ईस्वी में निर्मित चारों शिविर क्रमशः बाल्मीकि आश्रम, गुरुनानक दरबार, वेदव्यास आश्रम और गोस्वामी तुलसीदास आश्रम के नाम से जाने जाते हैं। इन शिविरों के पूरब में छोटी कुटी है जहां संत शाही साहब साधकों के साथ ध्यान करते थे। ध्यान-शिविरों का यह पूरा परिसर 'महर्षि मेंहीं विहार' के नाम से जाना जाता है। इन्हीं शिविरों से सटे पूरब-उत्तर दिशा में 20 फीट व्यास का एक भव्य कुआं है जिसे संत शाही साहब ने वर्ष 1991 में बनवाया था। उस समय कृषि कार्य के लिये इस कुएं का जल बड़ा ही उपयोगी था। आश्रम परिसर में एक होमियो क्लिनिक भी है जहां एक धर्मप्राण भाई शत्रुघ्न चौधरीजी गुरुश्री के आदेश से रोगियों की निःशुल्क सेवा करते हैं।

संत शाही स्वामीजी महाराज ने अपने जीवन काल में ज्येष्ठ कृष्णपक्ष तृतीया विक्रम संवत 2068 को संतमत जैसी विशाल संस्था संचालन की जिम्मेदारी स्वामी चतुरानंदजी महाराज को सौंपने की कृपा की।'महर्षि मेंहीं धाम' में प्रतिवर्ष कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित होते हैं जिनमें अपार श्रद्धा से काफी संख्या में भक्तगण उमड़ पड़ते हैं। महर्षि मेंहीं जयंती (वैशाख शुक्ल चतुर्दशी) एवं गुरु-पूर्णिमा को पूरे आश्रम परिसर की साज-सज्जा की जाती है जिसमें श्रद्धालुओं का सैलाब उमड़ता है। भक्तगण भंडारा का प्रसाद और सत्संग भजन का आनंद लेते हैं।

महर्षि मेंहीं परमहंसजी महाराज के गुरु थे परम संत बाबा देवी साहब। बाबा साहब का जन्म संत तुलसी साहब के आशीर्वाद से हुआ था। इन्हीं परमसंत बाबा देवी साहब के महापरिनिर्वाण की पुण्य स्मृति में 1991 ईस्वी से निरन्तर 16 जनवरी से 14 फरवरी तक 'मास ध्यान व साधना शिविर' का आयोजन किया जाता है। संत शाही स्वामीजी महाराज ने यहां मास-ध्यान की परम्परा चलायी थी । ध्यानाभ्यास आत्मोद्धार के लिए प्रयास है। यह भगवान बुद्ध की ध्यान परंपरा का अवदान स्वरूप है। अब परम पूज्य प्रधान आचार्य स्वामी चतुरानंदजी महाराज के सान्निध्य में आत्मोद्धार का यह आयोजन होता है, जिसमें सैकड़ों साधक सम्मिलित होते हैं।

वर्ष 2012 से यहां प्रतिवर्ष 'सद्गुरु ज्ञान महोत्सव' का विशेष आयोजन होता है। यह कार्यक्रम सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंसजी महाराज की जयंती से प्रारंभ होता है, इसका समापन उनके महापरिनिर्वाण दिवस पर होता है। ज्ञातव्य है कि 17 दिनों की इसी अवधि में उनके पावन हृदय-स्वरूप संत शाही स्वामीजी महाराज की जयंती और महापरिनिर्वाण भी समाहित हैं। इस कार्यक्रम में ग्यारह दिवसीय निःशुल्क ध्यान-शिविर का आयोजन होता है जिसमें 1000 साधक एवं साधिकाओं की निःशुल्क व्यवस्था की जाती है। इसका समापन चार दिवसीय सत्संग एवं भंडारा के साथ होता है। वर्ष 2016 में यहां पहली बार 'वर्षावास-ध्यान-शिविर' का आयोजन किया गया। यह आयोजन सिर्फ आचार्यों और सन्यासियों के लिए दो माह का किया गया था। वर्ष 2017 में यह कार्यक्रम तीन माह के लिये आयोजित होंगे। अभी बारह मासा ध्यान-शिविर चल रहा है, जिसमें कुछ महात्मा और साधक एक वर्ष तक लगातार शिविर के नियमों का अनुपालन करेंगे। ऐसे कार्यक्रमों में प्रतिदिन पांच घंटे का ध्यान और तीन बार सत्संग होते हैं। यहां के सामान्य कार्यक्रमों में भारत के विभिन्न राज्यों यथा- बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा आदि से भक्तों के आगमन होते हैं। विदेशों से भी भक्त यहां आते हैं, जिनमें नेपाल, जापान, अमेरिका, सिंगापुर, मलेशिया, आस्ट्रेलिया के लोग होते हैं। यहां प्रतिदिन दर्शनार्थियों की आवाजाही रहती है, जो इस संत की तपोभूमि का पावन रज ललाट पर धारण कर गौरवान्वित होते हैं। बरसात में बाबाधाम देवघर और बासुकीनाथ तीर्थ जानेवाले दर्शनार्थी भक्तों की भीड़ लगी रहती है।

'महर्षि मेंहीं धाम' से महर्षि मेंहीं महाराज और संत शाही स्वामीजी महाराज के साहित्य एवं उनके प्रवचनों के संकलन प्रकाशित होते हैं तथा दो मासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित की जाती हैं- एक 'शान्ति संदेश' और दूसरी 'सन्तमत प्रचार पत्रिका'। इन पत्रिकाओं के द्वारा जन-जन तक अध्यात्म ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाता है। 'महर्षि मेंहीं धाम' आज सिद्धपीठ की गरिमा से मंडित दर्शनीय तीर्थ-स्थल बन गया है। यहां संतों के नाम पर ध्यान-शिविरों एवं भवनों के नामकरण किए गए हैं। मंदिर की दीवारों पर संतों के भित्तिचित्र, सत्संग में 'सब संतन्ह की बड़ि बलिहारी' का तन्मय गायन, सद्ग्रंथ पाठ में संत-वाणी, प्रवचन में संतों की वाणियों का आधार, एक नाम- संतमत, एक लक्ष्य- 'संतचरण लौ लाई', एक उद्देश्य- ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर भक्ति का प्रचार करना। संतों के ज्ञान-रस में डूबा हुआ परिवेश 'महर्षि मेंहीं धाम' का- लाल मिट्टी, लाल वस्त्र, या यूं कहें कि 'लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल'... से पूरित रहता है। यहां का परिवेश भक्ति-रस आपूरित है जो भक्तों को अपना रंग देता है- भक्ति और ध्यान का, सदाचार और शुच्याचार का, जीवन की सार्थकता और 'भजिय राम सब काम बिहाई का'।

महर्षि मेंहीं

समुद्र मंथन में छिपे हैं
महान रहस्य

राजेंद्र साह

सागर मंथन की कथा

सनातन धर्म से संबंधित लगभग सभी लोग समुद्र मंथन की कथा को जानते हैं। यह कथा समुद्र से अमृत के प्याले से जुड़ी है जिसे पीने के लिए देवताओं और असुरों में विवाद उत्पन्न हो गया था। दरअसल यह घटना इन्द्र द्वारा ऋषि दुर्वासा, जिनका क्रोध कोई नहीं झेल पाया था, का असम्मान करने और परिणामस्वरूप अपना सिंहासन गंवाने से जुड़ी हुई है। अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा वापस पाने के लिए इन्द्र भगवान विष्णु की शरण में गए और उनकी सलाह पर वह क्षीर सागर का मंथन करने के लिए तैयार हुए, जिसके बाद निकले अमृत को देवताओं को पिलाना था।

> समुद्र मंथन से निकले विष को जब दानवों ने भी लेने से मना कर दिया तो भगवान शिव उसे पी गए। उस समय उनकी पत्नी पार्वती ने उनके गले को पकड़ लिया ताकि विष भीतर न जा सके। विष उनके गले से न ही बाहर निकला और न शरीर के अंदर गया, गले में ही अटका रहा। इससे उनका गला नीला पड़ गया। तभी से वे नीलकंठ महादेव कहलाए।

नाग वासुकी

मंदार पर्वत और वासुकी नाग की सहायता से समुद्र मंथन की तैयारी शुरू की गई। मंदार पर्वत के चारों ओर सर्प वासुकी को लपेटकर रस्सी की तरह प्रयोग किया गया। इतना ही नहीं विष्णु ने कछुए का रूप लेकर मंदार पर्वत को अपनी पीठ पर रखकर उसे सागर में डूबने से बचाया था।

असुर और देवता

क्षीर सागर में इस अमृत मंथन के दौरान सागर से सिर्फ अमृत का प्याला ही नहीं बल्कि और भी बहुत सी चीजें निकली थीं, जिनका वितरण देवताओं और असुरों में बराबर रूप से किया गया था।

मंथन के बाद अमृत का प्याला

मंथन के दौरान सबसे पहले विष का प्याला, हलाहल निकला, जिसे न तो देवता ग्रहण करना चाहते थे और न ही असुर। यह विष इतना खतरनाक था जो संपूर्ण ब्रह्मांड का विनाश कर सकता था। हलाहल को ग्रहण करने के लिए स्वयं भगवान शिव आए।

पार्वती और शिव

शिव ने विष का प्याला पी लिया लेकिन उनकी पत्नी पार्वती, जो उनके साथ खड़ी थीं उन्होंने उनके गले को पकड़ लिया ताकि विष उनके अंदर न जाए। ऐसे में ना तो विष उनके गले से बाहर निकला और ना ही शरीर के अंदर गया। वह उनके गले में ही अटक गया, जिसकी वजह से उनका गला नीला पड़ गया।

कामधेनु गाय

हलाहल के पश्चात इच्छा पूरी करने वाली कामधेनु गाय, उच्चैश्रवा नामक सफेद घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभमणि नामक हीरा, कल्पवृक्ष पेड़, धन की देवी लक्ष्मी, देवों के चिकित्सक धनवंतरि निकले। इनमें से अधिकांश वस्तुएं देवताओं के हाथ लगीं। असुर इस दरमियान अमृत के निकलने का इंतजार करते रहे लेकिन अमृत को असुरों को पिलाना घातक हो सकता था इसलिए देवताओं और असुरों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ।

अमृत का पान

देवता चाहते थे कि अमृत के प्याले में से एक भी घूंट असुरों को ना मिल पाए, नहीं तो वे अमर हो जाएंगे। वहीं असुर अपनी शक्तियों को बढ़ाने और अनश्वर रहने के लिए अमृत का पान किसी भी रूप में करना चाहते थे।

भगवान विष्णु बने मोहिनी

असुरों के हाथ अमृत का प्याला लग न सके इसलिए स्वयं भगवान विष्णु को मोहिनी का रूप धरना पड़ा, ताकि वे असुरों का ध्यान अमृत से हटाकर सारा प्याला देवताओं को पिला सकें।

ऐसा ही हुआ देवतागण अमृत पी गए और अपने आत्मसंयम को खो चुके असुरों के हाथ अमृत का घूंट नहीं लगा।

आध्यात्मिक सत्य

खैर ये तो पौराणिक कथा है जो व्यक्ति के वास्तविक जीवन से बहुत गहरे तौर पर जुड़ी हुई है। इस कथा में एक गुप्त कहानी भी छिपी हुई है जो व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती है।

मनुष्य जीवन से जुड़ी कथा

चलिए आपको बताते हैं समुद्र मंथन की कथा, उसके पात्र और मंथन के बाद सागर से निकली वस्तुओं का व्यक्ति के जीवन से क्या और किस तरह का आध्यात्मिक संबंध है। यह कहानी मनुष्य द्वारा किए गए उन प्रयत्नों से जुड़ी है जो उसे मोक्ष और अलौकिक सत्य की शरण में ले जाने में सक्षम हैं।

देवताओं का चरित्र

इस कहानी में देवताओं का किरदार व्यक्ति के भीतर छिपी इच्छाओं को प्रदर्शित करता है, जिन्हें पूरा करने के लिए वह हर कोशिश करता है। देवता आपकी इन्द्रीय और समझ को दर्शाते हैं जबकि असुर आपकी नकारात्मक इच्छाओं और आपके भीतर छिपी बुराइयों के प्रतीक हैं।

भावनाओं का रुख

क्षीर सागर आपकी अंतरचेतना का प्रतीक है। मस्तिष्क को हमेशा सागर माना गया है क्योंकि इसके भीतर बहुत सी चीजें छिपी हैं वहीं विचार और भावनाएं इसकी लहरों के समान हैं जो समय-समय पर अपना रुख बदलती रहती हैं।

एकाग्रता

मंदार, अर्थात मन और धार, पर्वत आपकी एकाग्रता को दर्शाता है। क्योंकि यह एक धार यानि एक ही दिशा में सोचने की बात कहता है जो एकाग्रता से ही संभव है। मनुष्य को हर परिस्थितियों में एकाग्र होने की जरूरत है।

भौतिक दुख

विष्णु का अवतार कछुआ, अहं को छोडकर एकाग्रता की राह अपनाने को दर्शाता है वहीं वासुकी सर्प इच्छाओं का प्रतीक है। इसके अलावा हलाहल, भौतिक जीवन से जुड़े दुख और परेशानियों को दर्शाता है। हमने कई लोगों को यह कहते सुना है कि जब हम साधना के पथ पर चलते हैं तो शुरुआत में कई परेशानियों से जूझना पड़ता है। भौतिक दुख या जुड़ाव अर्थात हलाहल साधना के पथ पर चलने के बीच में आने वाली पहली समस्या है।

शिव अर्थात विनाशक

हलाहल को ग्रहण करने वाले भगवान शिव भ्रम का विनाश करने वाले पवित्र देव हैं। वे इच्छा और तत्परता का प्रतीक हैं जो साधना के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए जरूरी हैं। इनके अलावा वे मस्तिष्क पर नियंत्रण करने को भी दर्शाते हैं। यह शाश्वत है जो यहां शिव हैं।

गर्व और भटकाव

मोहिनी के आकर्षक रूप में भगवान विष्णु गर्व और भटकाव का प्रदर्शन करते हैं जो आपको अमृत यानि जीवन के सार से दूर करता है। ये

आखिरी दो ऐसी चीजें हैं जो व्यक्ति को उसके उद्देश्य पाने की राह से दूर करती हैं।

सिद्धियां

सागर मंथन के दौरान निकली वस्तुओं का अर्थ एकाग्रता से ध्यान लगाने और भौतिक समस्याओं से खुद को दूर करने के बाद प्राप्त होने वाली सिद्धियों से है जो मानवों के उत्थान के लिए है, विश्व के कल्याण के लिए है। इसका अभ्यास हरेक मनुष्य को करना चाहिए तभी अपने अंदर का 'मंथन' होगा। इस मंथन के गूढ़ रहस्यों को स्वयं में उतारने की जरूरत है तभी कल्याण होगा।

लाइफ मैनेजमेंट में

समुद्र मंथन

रमेश चंद्र झा

पंचांग के अनुसार हर साल कार्तिक महीने की कृष्ण पक्ष त्रयोदशी के दिन धनवंतरि त्रयोदशी मनाई जाती है। मान्यता के अनुसार, इसी दिन समुद्र मंथन से भगवान धन्वंतरि प्रकट हुए थे। इसलिए इस दिन भगवान धन्वंतरि की विशेष पूजा की जाती है। समुद्र मंथन से धन्वतंरि के साथ अन्य रत्न भी निकले थे। आज हम आपको समुद्र मंथन की पूरी कथा व उसमें छिपे लाइफ मैनेजमेंट के सूत्रों के बारे में बता रहे हैं।

समुद्र मंथन की कथा

धर्म ग्रंथों के अनुसार, एक बार महर्षि दुर्वासा के श्राप के कारण स्वर्ग श्रीहीन (ऐश्वर्य, धन, वैभव आदि) हो गया। तब सभी देवता भगवान विष्णु के पास गए। भगवान विष्णु ने उन्हें असुरों के साथ मिलकर समुद्र मंथन करने का उपाय बताया और ये भी बताया कि समुद्र मंथन के पश्चात अमृत निकलेगा, जिसे ग्रहण कर तुम अमर हो जाओगे। यह बात जब देवताओं ने असुरों के राजा बलि को बताई तो वे भी समुद्र मंथन के लिए तैयार हो गए। वासुकि नाग की नेती बनाई गई और मंदराचल पर्वत की सहायता से समुद्र को मथा गया। समुद्र मंथन से उच्चैश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, लक्ष्मी, भगवान धन्वन्तरि सहित चौदह रत्न निकले।

क्या सीखें

समुद्र मंथन को अगर लाइफ मैनेजमेंट के नजरिए से देखा जाए तो हम पाएंगे कि सीधे-सीधे किसी को अमृत (परमात्मा) नहीं मिलता। उसके लिए पहले मन को विकारों को दूर करना पड़ता है और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण करना पड़ता है। समुद्र मंथन में 14 नंबर पर अमृत निकला था। इस 14 अंक का अर्थ है ये है 5 कमेन्द्रियां, 5 जनेन्द्रियां तथा अन्य 4 हैं- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इन सभी पर नियंत्रण करने के बाद ही परमात्मा प्राप्त होते हैं।

1. **कालकूट विष**

समुद्र मंथन में से सबसे पहले कालकूट विष निकला, जिसे भगवान शिव ने ग्रहण कर लिया। इसका तात्पर्य है कि अमृत (परमात्मा) हर इंसान के मन में स्थित है। अगर हमें अमृत की इच्छा है तो सबसे पहले हमें अपने मन को मथना पड़ेगा। जब हम अपने मन को मथेंगे तो सबसे पहले बुरे विचार ही बाहर निकलेंगे। यही बुरे विचार विष हैं। हमें इन बुरे विचारों को परमात्मा को समर्पित कर देना चाहिए और इनसे मुक्त हो जाना चाहिए।

2. **कामधेनु**

समुद्र मंथन में दूसरे क्रम में निकली कामधेनु। वह अग्निहोत्र (यज्ञ) की सामग्री उत्पन्न करने वाली थी। इसलिए ब्रह्मवादी ऋषियों ने उसे ग्रहण कर लिया। कामधेनु प्रतीक है मन की निर्मलता की। क्योंकि विष निकल जाने के बाद मन निर्मल हो जाता है। ऐसी स्थिति में ईश्वर तक पहुंचना और भी आसान हो जाता है।

3. **उच्चैश्रवा घोड़ा**

समुद्र मंथन के दौरान तीसरे नंबर पर उच्चैश्रवा घोड़ा निकला। इसका रंग सफेद था। इसे असुरों के राजा बलि ने अपने पास रख लिया। लाइफ मैनेजमेंट की दृष्टि से देखें तो उच्चैश्रवा घोड़ा मन की गति का प्रतीक है। मन की गति ही सबसे अधिक मानी गई है। यदि आपको अमृत (परमात्मा) चाहिए तो अपने मन की गति पर विराम लगाना होगा। तभी परमात्मा से मिलन संभव है।

4. **ऐरावत हाथी**

समुद्र मंथन में चौथे नंबर पर ऐरावत हाथी निकला, उसके चार बड़े-बड़े दांत थे। उनकी चमक कैलाश पर्वत से अधिक थी। ऐरावत को देवराज इंद्र ने रख लिया। ऐरावत हाथी प्रतीक है बुद्धि का और उसके चार दांत लोभ, मोह, वासना और क्रोध का। चमकदार (शुद्ध व निर्मल) बुद्धि से ही हमें इन विकारों पर काबू रख सकते हैं।

5. **कौस्तुभ मणि**

समुद्र मंथन में पांचवें क्रम पर निकली कौस्तुभ मणि, जिसे भगवान विष्णु ने अपने हृदय पर धारण कर लिया। कौस्तुभ मणि प्रतीक है भक्ति का। जब आपके मन से सारे विकार निकल जाएंगे,

तब भक्ति ही शेष रह जाएगी। सिर्फ इस भक्ति को ही भगवान ग्रहण करेंगे।

6. **कल्पवृक्ष**

समुद्र मंथन में छठे क्रम में निकला इच्छाएं पूरी करने वाला कल्पवृक्ष, इसे देवताओं ने स्वर्ग में स्थापित कर दिया। कल्पवृक्ष प्रतीक है आपकी इच्छाओं का। कल्पवृक्ष से जुड़ा लाइफ मैनेजमेंट सूत्र है कि अगर आप अमृत (परमात्मा) प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं तो अपनी सभी इच्छाओं को त्याग दें। मन में इच्छाएं होंगी तो परमात्मा की प्राप्ति संभव नहीं है।

7. **रंभा**

समुद्र मंथन में सातवे क्रम में रंभा नामक अप्सरा निकली। वह सुंदर वस्त्र व आभूषण पहने हुई थीं। उसकी चाल मन को लुभाने वाली थी। ये भी देवताओं के पास चलीं गई। अप्सरा प्रतीक है मन में छिपी वासना का। जब आप किसी विशेष उद्देश्य में लगे होते हैं तब वासना आपका मन विचलित करने का प्रयास करती हैं। उस स्थिति में मन पर नियंत्रण होना बहुत जरूरी है।

8. **देवी लक्ष्मी**

समुद्र मंथन में आठवें स्थान पर निकलीं देवी लक्ष्मी। असुर, देवता, ऋषि आदि सभी चाहते थे कि लक्ष्मी उन्हें मिल जाएं, लेकिन लक्ष्मी ने भगवान विष्णु का वरण कर लिया। लाइफ

मैनेजमेंट के नजरिए से लक्ष्मी प्रतीक है धन, वैभव, ऐश्वर्य व अन्य सांसारिक सुखों का। जब हम अमृत (परमात्मा) प्राप्त करना चाहते हैं तो सांसारिक सुख भी हमें अपनी ओर खींचते हैं, लेकिन हमें उस ओर ध्यान न देकर केवल ईश्वर भक्ति में ही ध्यान लगाना चाहिए।

9. **वारुणी**

समुद्र मंथन से नौवें क्रम में निकली वारुणी देवी, भगवान की अनुमति से इसे दैत्यों ने ले लिया। वारुणी का अर्थ है मदिरा यानी नशा। यह भी एक बुराई है। नशा कैसा भी हो शरीर और समाज के लिए बुरा ही होता है। नशा एकाग्रता को भंग करता है। परमात्मा को पाना है तो नशा छोड़ना होगा।

10. **चंद्रमा**

समुद्र मंथन में दसवें क्रम में निकले चंद्रमा।

समुद्र मंथन को अपने जीवन में उतारकर ही मानव स्वयं का प्रबंधन कर सकता है। दूसरी अन्य चीजों का प्रबंधन करना तो आसान है किंतु स्वयं का प्रबंधन करते हुए, स्वयं पर नियंत्रण करते हुए जब आप आगे बढ़ते हैं तभी परमात्मा की प्राप्ति संभव है।

चंद्रमा को भगवान शिव ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया। चंद्रमा प्रतीक है शीतलता का। जब आपका मन बुरे विचार, लालच, वासना, नशा आदि से मुक्त हो जाएगा, उस समय वह चंद्रमा की तरह शीतल हो जाएगा। परमात्मा को पाने के लिए ऐसा ही मन चाहिए। ऐसे मन वाले भक्त को ही अमृत (परमात्मा) प्राप्त होता है।

11. **पारिजात वृक्ष**

इसके बाद मंथन से पारिजात वृक्ष निकला। इस वृक्ष की विशेषता थी कि इसे छूने से थकान मिट जाती थी। यह भी देवताओं के हिस्से में गया। लाइफ मैनेजमेंट की दृष्टि से देखा जाए तो समुद्र मंथन से पारिजात वृक्ष के निकलने का अर्थ सफलता प्राप्त होने से पहले मिलने वाली शांति है। जब आप (अमृत) परमात्मा के इतने निकट पहुंच जाते हैं तो आपकी थकान स्वयं ही दूर हो जाती है और मन में शांति का अहसास होता है।

12. **पांचजन्य शंख**

समुद्र मंथन के बारहवें क्रम में पांचजन्य शंख निकला। इसे भगवान विष्णु ने ले लिया। शंख को विजय का प्रतीक माना गया है साथ ही इसकी ध्वनि भी बहुत ही शुभ मानी गई है। जब आप अमृत (परमात्मा) से एक कदम दूर होते हैं तो मन का खालीपन ईश्वरीय नाद यानी स्वर से भर जाता है। इसी स्थिति में आपको ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

13-14. **धन्वंतरी व अमृत कलश**

समुद्र मंथन के क्रम में सबसे अंत में भगवान धन्वंतरी अपने हाथों में अमृत कलश लेकर निकले। भगवान धन्वंतरी प्रतीक हैं निरोगी तन व निर्मल मन के। जब आपका तन निरोगी और मन निर्मल होगा तभी इसके भीतर आपको परमात्मा की प्राप्ति होगी। यही धन्वंतरी देवताओं के वैद्य हुए।

समुद्र मंथन को अपने जीवन में उतारकर ही मानव स्वयं का प्रबंधन कर सकता है। दूसरी अन्य चीजों का प्रबंधन करना तो आसान है किंतु स्वयं का प्रबंधन यानी मैनेजमेंट ऑफ सेल्फ काफी मुश्किल। स्वयं का प्रबंधन करते हुए एवं स्वयं पर नियंत्रण करते हुए जब आप आगे बढ़ते हैं तभी परमात्मा की प्राप्ति संभव है।

अक्षरधाम दिल्ली में उत्कीर्ण प्रतिकृति में ऐरावत हाथी

अमृतकुंभ मंदार

डॉ. अमरेन्द्र

{आरंभ संगीत के अनन्तर स्त्री-पुरुष के स्वर में गीत पाठ}

निदेशक : छांव यह मंदार की
रोज गिरि के शिखर पर से
उदधि उत्थित अमिय बरसे,
भीगता है मन-पथिक यह
कौन गुजरा है इधर से;
गूंज है झंकार की।
छांव यह मंदार की।
इक व्यथा मंथन-कथा की
दीप्त आभामय तथापि,
मूर्तियां ऐसे सुशोभित
पंक्तियां ज्यों वंदना की;
स्मृतियां मधुभार की।
छांव यह मंदार की।

वाचक : सच ही तो, करोड़ों-करोड़ वर्षों से खड़े मंदार पर्वत की कथा आज भी आभामय है, दीप्त है, जिसके शिखर से अमृत की फूटी धारा की कलनाद कथा आज भी जग को झंकृत करती है।

वाचिका : मंदार, जिसने देवताओं को अमृत का दान किया; मंदार, जिसका अर्थ ही होता है- स्वर्ग; अआखिर अंगप्रदेश के किस भूखंड में यह अवस्थित है, अपने अतीत की स्मृतियों का मधुभार लिए!

{ढोल, मृदंग झाल के संगीत के साथ संवाद}

नटी : भागलपुर की भागीरथी के
दक्षिण में मंदार,
अंगदेश के हृदय-वक्ष पर
अमृत का मधुभार।

नट : झारखंड के दुमका से
उत्तर चौवालिस मील,
सागर-मंथन दंड बना जो,
शिव-सा गहरा नील।

नटी : असुरों का आराध्य देव ही,
पूजित यह मंदार,
जिसकी गाथा सुर-नर से ले
गाता है मंदार।

नट : इन असुरों के देव महाशिव का
मंदार यह घर है,
कथा पुराणों में वर्णित,
अब भी अजर-अमर है।

नटी : इस पर्वत के पदतल पर ही
बहती चीर नदी है,
कभी क्षीर सागर कहलाती,
चुप यह कहां सदी है।

नट : है पुनीत कितना मंद्राचल,
नीलम पत्थर का हो शतदल।
नील वर्ण; विष्णु का आसन,
शिव का जो निश्चित भद्रासन।
{संगीत झंकार}

वाचक : हां, मंदार पर्वत के पदतल पर प्रवाहित चीर नदी ही लोक में क्षीर सागर के नाम से प्रसिद्ध नदी है, जिसके किनारे विष्णु का निवास कहा गया है।

वाचिका : विष्णु के रंग-रूप से असुर बहुत प्रभावित थे, इसी से शिवभक्त असुर विष्णु को बहुत चाहते थे, लेकिन अन्य देवताओं को शायद नहीं।

वाचक : पुराण कथा है कि विष्णु से प्रकट हुए ब्रह्मा, एक बार मंदार की शोभा से विमुग्ध, पर्वत पर ध्यानस्थ हो गए, कि तभी असुरराज की दृष्टि ब्रह्मा पर पड़ी, जिससे उसका क्रोध ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा।
{ब्रिज म्यूजिक}

मधु : (अत्यंत गुरु गंभीर स्वर में) कौन हो तुम, और मेरे उस साम्राज्य में, बिना मेरे आदेश के, किसके ध्यान में लीन हो?

ब्रह्मा : मैं प्रजापति ब्रह्मा हूं। भगवान विष्णु मुझे प्रकट कर स्वयं तपस्या में लीन हो गए हैं, अब मैं उनकी ही तपस्या कर रहा हूं।

मधु : (क्रोध और अहंकार के स्वर में) विष्णु! हा, हा, हा, हा, हा। वह भगवान कब से हो गया?(और भी तेज स्वर में) ब्रह्मा, इस मंदार क्षेत्र में, मेरे इष्ट के सिवा, किसी और की तपस्या करने का अधिकार किसी और को प्राप्त नहीं है। तुम्हारे विष्णु को भी नहीं।

ब्रह्मा : (नम्रता से) मैं जान सकता हूं, कि शिलाखंड-सा प्रशस्त वक्ष और लौह दंड की भुजाओं को धारण करनेवाले आप दोनों कौन हैं?

मधु : लगता है, मंदार साम्राज्य के स्वामी असुरराज मधु के संबंध में तुम्हें कुछ भी ज्ञात नहीं। ब्रह्मा, मेरी आज्ञा के बिना तुमने मंदार पर विष्णु की तपस्या की है, इसका दंड मैं तुम्हें अवश्य दूंगा। मैं अभी ही तुम्हारा शिरोच्छेद करता हूं।

ब्रह्मा : लेकिन मैं निरपराध हूं, मैं सत्य से अनभिज्ञ था।

मधु : यही तो तुम्हारा अपराध है। मेरे अनुज कैटभ, खड्ग से इस विष्णुभक्त को टुकड़ों में कर दो।

ब्रह्मा : (विह्वल स्वर में)
हे नारायण, हे विष्णु, त्राहिमाम!

{संगीत अचानक तीव्र होता हुआ, जो दिव्य आत्मा के अवतरण का संकेत दे।}

विष्णु : कैटभ, अपने खड्ग को नीचे करो!

मधु : (गुस्से से) विष्णु, तुम यहां?

विष्णु : (नम्रता से) तुमने प्रजापति पर खड्ग से प्रहार करने का आदेश दे कर जिस अधर्म को स्थापित किया है, मधु, उसका दंड तो सिर्फ यही है कि मैं तुम्हारे सर को ही धड़ से अलग कर दूं। लो, संभालो इस चक्र को।

{गति सूचक ध्वनि तेज होती हुई, पुनः वही अट्टहास।}

विष्णु : (आश्चर्य के स्वर में) अरे, यह तो सर से अलग होकर भी युद्ध करने को तत्पर है। क्यों न इसे इसी पर्वत के नीचे दबा दूं।

मधु : (अट्टहास) विष्णु, तुम्हारे मन में उठ रही बातों को जान रहा हूं। मैं मंदार को अपनी अपार शक्ति से हिलाकर बाहर आ जाऊंगा।

विष्णु : तुमने ठीक ही कहा, मधु। तुम्हारी इस दुर्दम्य शक्ति को मैं भी जानता हूं, इसी से मैं तुम्हारे धड़ को मंदराचल के नीचे रख कर, पर्वत के शिखर पर बैठ जाऊंगा और अपने पैरों से ही मंदार को दबाए रखूंगा, ताकि तुम किसी भी कल्प में बाहर न आ सको।

{संगीत प्रवाह}

वाचिका : असुरराज मधु के वध के कारण ही विष्णु का एक नाम मधुसूदन हो गया।

वाचक : और मंदार के शिखर पर विष्णु के वास हो जाने के कारण मंदार का संबंध मधुसूदन से जुड़ गया। मंदार का महत्व मधुसूदन के कारण और भी त्रिलोकव्यापी बन गया।

{पृष्ठभूमि में स्तुति पाठ}

चीर चान्दनयोर्मध्ये
मन्दारो नाम पर्वतः
तस्यारोहणमात्रेण
नरो नारायणो भवेत।
मंदार शिखरं दृष्ट्वा
दृष्ट्वा वा मधुसूदनम्
कामधेन्वा मुखं दृष्ट्वा
पुनर्जन्म न विद्यते।

वाचक : यह कथन वृहद विष्णु पुराण का है कि चीर और चांदन नदी के मध्य में अवस्थित मंदार के शिखर, और शिखर पर अवस्थित मधुसूदन के दर्शन से मनुष्य को पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता है; वह नर से नारायण हो जाता है।

वाचिका : अंग प्रदेश की दो सुविख्यात और प्राचीनतम नदियों के बीच अवस्थित इसी मंदार को, कभी सुरों और असुरों ने मिलकर सागर मंथन के लिए दंड बनाया था।

वाचक : आज विद्वान भले ही सागर-मंथन की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व्याख्या कर रहे हों, लेकिन इससे इसका ऐतिहासिक महत्व ध्वस्त नहीं हो जाता है।

वाचिका : इतिहास साक्षी है कि पूरा-का-पूरा यह अंगप्रदेश ही असुरों का साम्राज्य था, और मंदार क्षेत्र उनका स्वर्गलोक।

वाचक : मंदार पर्वत अपने आस-पास के विस्तृत घने जंगलों को मेघों का वरदान बांटता था, जिन जंगलों में विशालकाय हाथियों का वास होता, आक-जवासों के फूल खिलते, जिन फूलों से ही असुर अपने देवता शिव की अराधना करते, पूरा-का-पूरा पर्वत ही उनके लिए शिव था, क्योंकि मंदार तब भी विशाल शिवलिंग रूप में ही था, यह आज भी है।

वाचिका : ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित मंदार पर्वत अपनी ऊंचाई में आज लगभग सात सौ फीट तक सीमित रह गया है, और लगभग चार मील की परिधि में बंधा हुआ लेकिन एक ही चट्टान से निर्मित विशाल शिवलिंग की तरह मंदार पर्वत की शोभा आज भी अलौकिक छवि को सृजती है।

वाचक : पुराणों की कथाओं से यही ज्ञात होता है कि मंदार मधु-कैटभ जैसे असुर भाइयों के ही अधीन था, और अग्रज होने के नाते मधु यहां का अधिपति था, लेकिन मंदार की रक्षा का भार राहु जैसे असुर रक्षकों पर भी होगा।

वाचिका : पूर्व दिशा में प्रवाहित हो रहे आर्यों को जब मंदार का महत्व ज्ञात हुआ होगा तब उन्होंने इसे अपने अधीन करने की इच्छा की होगी। लेकिन मधु-कैटभ और राहु जैसे अति पराक्रमी असुरों के कारण यह संभव ही नहीं था।

{ढोल,मृदंग का संगीत-प्रभाव।}

नट : तब देवों ने चाल चली यह,
कर ली संधि असुर से,
जुटने लगे देवगण अब तो,
अपने-अपने पुर से।

नटी : और हुआ निश्चित नक्षत्र,
कातिक की एकादशी थी,
असुरों और सुरों के मन में,
इच्छा एक बसी थी।
जो मंथन से निकलेगा,
यह दोनों के बीच बंटेगा,
सोच रहे थे दोनों,
कुछ भी किसका कहां घटेगा?

नट : फिर तो बासुकी नाग-रज्जू से
मथने लगे वे सागर,
चांद, सुरा, ऐरावत, लक्ष्मी
और अमृत का गागर।
ऊपर आए रत्न चौदहों,
इक अमृत की खातिर,
भिड़े असुर-सुर आपस में ही,
कोई नहीं था इस्थिर।

नटी : विष्णु बने तब भुवनमोहिनी
अमृतघट ले कर में
लगे बांटने देवों में ही,
बाकी रहे अधर में।
राहू समझ गया सब चालें,
घुसा सुरों के दल में,
पी कर अमृत अमर हुआ वह,
अद्भुत था जो बल में।

नट : क्रुद्ध विष्णु का चला सुदर्शन,
लेकिन राहू अमर है,
मंद्राचल की चट्टानों पर
अंकित-लिखित समर है।

{ढोल, मृदंग का संगीत-प्रभाव}

वाचक : मंद्राचल की मथनी और समुद्र मंथन की पुराकथा अगर धर्मकथा की तरह लगती है, तो इसका एक कारण यही है कि भारत का प्राचीन इतिहास पुराणकथा के रूप में लिखित है।

वाचिका : अगर इतिहास और भूगोल को आमने-सामने रख कर देखें, तो तथ्य स्वतः ही उभर आएंगे।

वाचक : भारत के भूगोल में तीन पर्वतों, मंदार, विन्ध्याचल और हिमालय को अत्यधिक प्रमुखता प्राप्त है। इन पर्वतों में हिमालय तो अन्य दो की तुलना में किशोर उम्र का ही है।

वाचिका : जहां तक मंदार का प्रश्न है, वह तो अब अपनी काया से जर्जर हो चला है। हिमालय का शरीर फैल रहा है, और मंदार की काया सिकुड़ गई है। यह इसलिए कि हिमालय से करोड़ों-करोड़ वर्ष पूर्व मंदार का जन्म हो चुका था। यह वही पर्वत है, जहां से दक्षिण भारत का उत्स प्रारंभ होता है, मंदार और विंध्याचल की चट्टानें एक जैसी हैं।

वाचक : यह वही मंद्राचल पर्वत है, जो आदिदेव शिव का पूर्व गृह है। बाद में वे कैलाशवासी हुए। लेकिन वहां भी कहां स्थाई रूप से रह पाए! असुर त्रिपुरासुर अपनी तपस्या से शिवपुत्र गणेश को प्रसन्न करने में सफल हो गया।

वाचिका : फिर क्या था, उसने देवलोक के साथ शिव की कैलाशपुरी को भी अपने अधीन कर लिया।

{ब्रिज म्यूजिक।}

शिव : {आश्चर्य के स्वर में}
आश्चर्य! जो कैलाश मेरा आसन है, वही किस कारण इस तरह कंपित है?

त्रिपुर : {गंभीर अट्टहास} नीचे देखो, शिव। मेरी बांहों में तुम्हारा कैलाश पर्वत किस तरह सिमटा पड़ा है। मैं चाहूं, तो इसे एक पल में छिन्न-भिन्न कर सकता हूं।
{पुनः अट्टहास}

शिव : त्रिपुरासुर, तुम!

त्रिपुर : हां, मैं त्रिपुरासुर ही हूं। तुम अपना हित चाहते हो, तो कैलाशपुरी मुझे सौंप दो।

पार्वती : हे मेरे स्वामी, आप इस असुर की ऐसी विधर्मी बातें सुनकर भी मौन क्यों हैं? आपका क्रोध क्यों नहीं उबलता?

शिव : नहीं प्रिये, तुम त्रिपुरासुर की शक्ति से परिचित नहीं। अच्छा होगा, कि हम कैलाश छोड़कर अपने पूर्व गृह मंद्राचल को लौट जाएं, जहां इस असुरराज का प्रभाव पहुंच ही नहीं सकता है।

{संगीत प्रवाह।}

नट : पा कर के कैलाश को,
बढ़ा त्रिपुर का मान,
फिर तो तब मंदार पर,
गया असुर का ध्यान।

त्रिपुर : {अट्टहास, फिर अत्यधिक गंभीर स्वर में}
शिव, मंदार शिखर से तुम नीचे निहारो। देखो, मैं त्रिपुरासुर हूं। मेरी इच्छा है कि तुम इस मंद्राचल को भी मुझे सौंप दो। और अगर तुम इस पर्वत को नहीं ही देने के इच्छुक हो, तो ऐसा करो, कि पार्वती को ही मेरी सेवा में नियुक्त कर दो!

पार्वती : स्वामी, स्वर्गलोक से अधिक सुषमामय इस मंद्राचल को क्या किसी तरह इस असुर को सौंपा जा सकता है?

शिव : {आवेश में}
प्रिये, न तो मैं अपने इस गृह को किसी के अधीन कर सकता हूं, और न अपनी प्रिया को। यह मंदार पर्वत है, यहां आकर कोई भी संकट अधिक देर टिक ही नहीं सकता। यह पर्वत मेरा स्वर्ग है, इसी से मैं इसे मंदार कहता हूं।
{संगीत प्रवाह।}

नट : इतना कहना था कि
शिव के हाथों मरा असुर वह,

नटी : बोल रहे हैं मंद्राचल के
पत्थर और कमलदह।
{संगीत प्रवाह।}

वाचक : पुराण के इस मंद्राचल की नव भौगोलिक स्थिति को देखकर कभी-कभी यह शंका हो उठती है...

वाचिका : क्या वर्तमान का मंद्राचल महाभारत काल का ही मंद्राचल है? अगर है, तो कहां है वह सागर, और कहां हैं वे रत्न?

वाचक : लेकिन इतने लाखों वर्षों के बाद यहां वह समुद्र कैसे हो सकता है, हां, अंग प्रदेश का भूगोल इसका संकेत अवश्य देता है।

वाचिका : जब बंगाल की भूमि अस्तित्व में नहीं आई थी, तब वर्तमान में बंगाल की खाड़ी का समुद्र इस मंद्राचल को छू कर लहराता था। लेकिन यह भौगोलिक कथा अंग प्रदेश में आर्यों के आगमन से बहुत पूर्व की है।

वाचक : तब यही संभव है कि समुद्र का कोई छूटा हुआ हिस्सा, विस्तृत झील के रूप में यहां अवस्थित हो। प्राप्त जीवाश्म से यहां समुद्र के होने की बात तो अब वैज्ञानिक भी स्वीकारते हैं। मंदार पर्वत उसी शेष सागर के बीच खड़ा होगा।

वाचिका : अपनी अद्भुत प्राकृतिक छटा और वानस्पतिक संपदा के कारण मंदार आरंभ से ही अनार्यों आर्यों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा होगा।

वाचक : समस्त राग-द्वेष से मुक्त होकर, और अपनी सारी संपदा को दान करने के बाद परशुराम ने इसी मंद्राचल को अपना निवास स्थान बनाया था, जिसे पुराणों में महेन्द्राचल पर्वत के नाम से जाना गया है। महेन्द्राचल ही मंद्राचल और मंद्राचल से मनराचल बन गया है। अब तो यह नाम घिस कर और भी छोटा हो गया है। 'मनार' से महेन्द्राचल का बोध हो जाता है। इसी मंद्राचल पर, कभी कर्ण ने परशुराम से इच्छित विद्या को प्राप्त करने की असफल कोशिश की थी, और अभिशापित हो गया था।

वाचिका : मंद्राचल को महेन्द्राचल कहने के पीछे भी पुराण का विशेष उद्देश्य रहा हो।

वाचक : पुराण प्रसिद्ध बात है कि इंद्र का संबंध मंद्राचल से ही था। कहने के लिए तो इतिहासकार यहां तक कहते हैं कि इंद्र असुर ही था, जिसे देवताओं ने भी अपना देवराज बना दिया था; इसलिए कि असुर इंद्र ने देवताओं की रक्षा में असुरों के दृढ़ किलाओं का भेदन किया था।

वाचिका : लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि अनार्यों या असुरों के प्रति वह क्रूर हो गया था। जब खांडव वन जल रहा था, तब नागों की रक्षा के लिए इंद्र ने पंद्रह दिनों तक बादल और वर्षा से अर्जुन को विफल कर रखा था।

वाचक : महाभारत कहता है कि क्रुद्ध इंद्र ने, विरोधियों पर, मंदार के शिखर को उठा कर प्रहार किया था। खांडव वन कहां था, यह तो अनुसंधान का विषय है, लेकिन इंद्र का, नागों की रक्षा के लिए, मंदार का शिखर लेकर प्रहार करना, बंद इतिहास को खोलने में सक्षम है। यहां इस तथ्य को रखना अनुचित नहीं होगा कि अंग प्रदेश के उत्तरी क्षेत्र नागवंशों की कथाओं से जुड़ा हुआ है। पुण्डरीक, जो नागवंश का संस्थापक राजा था, उसी के नाम पर पौण्ड्र राज्य की भी स्थापना हुई थी। पौण्ड्र आज के बिहार राज्य का पूर्णिया जिला है, जो पूर्ण अरण्य होने के कारण ऐसा कहाया। इससे पता लगता है कि नागों का राज्य अंग प्रदेश के दक्षिण से लेकर उत्तर तक फैला हुआ था, और एक देशीय होने के कारण नागों से इंद्र की गहरी निकटता थी, जिस कारण ही खांडव की रक्षा के लिए इंद्र ने अपनी संपूर्ण शक्ति लगा दी थी।

वाचिका : नारदीय महापुराण के अनुसार अंगप्रदेश के राजमहल की गंगा के तट पर ही घोर तपस्या के बाद शची ने इंद्र को पति रूप में प्राप्त किया था, जिस कारण यह क्षेत्र इन्द्राणी तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। यह कथा भी इंद्र के स्थान की ओर संकेत करती है।

वाचक : पुराण कथा के ही अनुसार उर्वशी समुद्र मंथन के क्रम में ही प्रकट हुई थी, जो देवराज इंद्र की प्रमुख अप्सराओं में अद्वितीय थी।

वाचिका : यहां यह भी स्मरणीय है कि इंद्र का वाहन हाथी है, अश्व नहीं, जबकि आर्य अश्वारोही थे, गजारोही नहीं। इंद्र का वाहन हाथी ऐरावत ही था, बिल्कुल सफेद।

वाचक : इतिहास से यह प्रमाणित तथ्य है कि अंग

प्रदेश का यह क्षेत्र सफेद हाथियों के लिए प्रसिद्ध था। देवराज के पास सफेद हाथी का होना, जिस तथ्य की ओर संकेत है, वह इतिहास के बंद पन्नों को खोलता है। आखिर हाथी का एक नाम मंदार भी क्यों है!

वाचिका : इंद्र अत्यधिक बलशाली पुरुष था, और अपने इस अहंकार के कारण वह ऋषियों के अपमान में भी नहीं चूकता था। कथा है कि वह एक बार अपने ऐरावत पर सवार इंद्र मंद्राचल के निकट से गुजर रहा था कि तभी उसे ऋषि दुर्वासा आते हुए दिखाई पड़े।
{ब्रिज म्यूजिक।}
{हाथी के चिग्घाड़ने का ध्वनि-प्रभाव।}

इंद्र : ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासा को मेरा नमस्कार है!

दुर्वासा : सुराधिपति इंद्र को मेरा आशीर्वाद।

इंद्र : आप को मंद्राचल की भूमि पर देख रहा हूं, ऋषिवर! आप तो कहोल गांव की पहाड़ी कासड़ी को कभी नहीं छोड़ते।

दुर्वासा : सुरपति इंद्र, मंद्राचल की शोभा ने जब भगवान विष्णु को ही इस भूमि पर बसने को विवश कर दिया है, तब इस दुर्वासा ऋषि का ही क्या। आकाशगंगा के दर्शन के लिए आया था, तो भगवान विष्णु से भी मिलते चला गया। पारिजात पुष्पों की यह माला उन्होंने ही मुझे दी है।

इंद्र : अहा, अद्भुत है पारिजात! मंद्राचल के सरोवरों-कुंडों में विकसित होनेवाला यह पारिजात पुष्प! उस पर पारिजातों से बनी यह माला!

दुर्वासा : (हर्ष से) अब मैं इस माला को देवराज इंद्र के गले में डालना चाहता हूं!

इंद्र : क्षमा करें, ऋषिवर! ऐरावतासीन होने के कारण मेरी गर्दन आप तक नहीं झुक सकती। फिर मेरी प्रिया इंद्राणी भी मेरे साथ है। इसे आप मेरे ऐरावत के लंबे दांतों पर ही डाल दें।

दुर्वासा : सुरपति इंद्र, आप ने यह तो सोचा होता कि पारिजात पुष्पों की यह माला भगवान विष्णु की दी हुई है। ऐरावत के दांतों पर रखने से इस माला का क्या अपमान नहीं होगा?

इंद्र : कुछ भी नहीं, ऋषिवर। पारिजात और मेरा यह ऐरावत, मंद्राचल की ही अमूल्य निधियां हैं। इसी से दोनों को हम मंदारवासी मंदार ही कहते हैं। फिर पारिजात की माला को ऐरावत के दांतों पर रखने से उसका अपमान कैसा? आप बिना किसी संकोच के माला ऐरावत दंतों पर रखकर निश्चिंत हो सकते हैं।
{ढोल-मृदंग की ध्वनियां।}

नट : ऋषि ने ऐरावत के दांतों पर
रखी वह माला,
लेकिन ऐरावत ने उसको
ऊपर तुरत उछाला।
{हाथी के चिग्घाड़ने की आवाज।}

नटी : माला गिरी, किया ऐरावत ने
उसको श्रीहीन,
क्रोधित हुए तुरत दुर्वासा,
दुख से होकर दीन।

नट : और शाप दे डाला ऋषि ने,
इंद्र हुआ श्रीहीन,
लगे भटकने मंद्राचल पर,
होकर दुख से दीन।

नटी : देख इंद्र को दीन,
किया देवों को दलित असुर ने,
लगे दहलने देव,
नई इक चाल चली तब सुर ने।

{ब्रिज म्यूजिक।}

वाचक : चूंकि इंद्र असुरों के भी पूजनीय था और देवताओं का भी राजा, इसी से विष्णु ने एकत्रित हुए देवों से कहा,
{तरंगायित संगीत-प्रवाह।}

विष्णु : हे देवगण, बलि तो अंग देश के स्वामी हैं, अगर आप सब उन्हें मनाने में समर्थ हो जाते हैं, तो सभी प्रकार के दुखों से मुक्ति संभव है।

कई स्वर : हे मधुसूदन, वह कैसे?

विष्णु : सम्राट बलि को यह समझाना होगा कि अगर सुर और असुर मिलकर मंद्राचल से समुद्र मंथन करें, तो समृद्धियों का संपूर्ण संसार उनके चरणों पर होगा। हे देवगण, यही बात देवराज इंद्र को भी बतानी होगी, ताकि दुर्वासा ऋषि के अभिशाप के कारण उनकी जो समृद्धि जाती रही है, वह उन्हें पुनः प्राप्त हो सके।
{तरंगायित संगीत-प्रवाह।}

वाचक : विष्णु की मंत्रणा के अनुसार ही असुर और सुरों ने मंदार-मंथन किया था, जिसमें हालाहल निकलने से पहले जीवन को अमरता देने वाला अमृत निकला था।

वाचिका : अमृत कोई अलौकिक वस्तु नहीं था। यह तो उन औषधियों का रस था, जो अमृत मंथन के क्रम में देवताओं को प्राप्त हुआ था। असुर उन औषधियों का ही प्रयोग कर इतने बलिष्ठ और पराक्रमी बने हुए थे।

वाचक : बलिष्ठ ही नहीं, अत्यधिक बुद्धिमान भी। तभी तो उनकी एक समृद्ध नगरी मंद्राचल के आसपास बसी थी, उस समृद्ध नगरी का नाम था बालीसा। बालीसा मंद्राचल के वनों में विचरनेवाली एक अपूर्व सुंदरी थी, जिसके नाम पर नगर का नाम भी पड़ा था।

वाचक : लेकिन किसी कारण वह अपने रूप को खोकर विरूपा हो गई थी।
{ढोल-मृदंग का ध्वनि-प्रवाह।}

नटी : बालीसा मंदार के नीचे
चुप-चुप रहती मौन,
यही रात दिन सोचा करती,
अब उसका है कौन।

नट : पापहरणी के जल से धोती,
अपनी काया-देह,
इक दिन देखा, रूप हुआ है
मणि-माणिक का गेह।

नटी : फिर क्या था, वह विचरण करती
हिरणी-सी ज्यों वन में,
पर्वत के कोने-कोने में,
जैसे चांद गगन में।

नट : इक दिन वह थी पापहरणी के पास
रही सुर टेर,
तभी घूमता आ पहुंचा
अनचोके वहां कुबेर।

नटी : तो, सुनो सुनने वालो, उसके रूप से विमोहित होकर कुबेर ने पूछा –
{ब्रिज म्यूजिक।}

कुबेर : सुंदरी, तुम कौन हो, मंदार की स्वामिनी या स्वर्ग की कोई अप्सरा; या फिर मेरी तरह इस पर्वत का सौंदर्य-पान के लिए यहां चली आई हो?

बालीसा : अतिथि, न तो मैं मंदार की स्वामिनी हूं, न स्वर्ग की ही अप्सरा; मैं तो मंदार की पुत्री हूं। मेरा नाम बालीसा है। क्या मैं जान सकती हूं कि आप कौन हैं?

कुबेर : रूपसी, मैं ऐश्वर्य का देवता कुबेर हूं। सुना है मंदार पर्वत का स्पर्श ही काया

को कंचन करता है। धरती पर ऐसा कौन-सा पर्वत है, जिसके हृदय पर अमृत-कोष विराजता है। धन्य है, यह अंग देश, जहा ऐसा पर्वत है! इसके दर्शन के मोह ने ही मुझे यहां तक खींच लाया है।

बालीसा : तो, अतिथि, आपने पर्वत का दर्शन कर लिया?

कुबेर : अब इसकी इच्छा नहीं रही, क्योंकि मैंने तुम्हारा दर्शन कर लिया है। सुंदरी, क्या तुम मेरा निवेदन स्वीकार करोगी?

बालीसा : कैसा निवेदन, अतिथि?

कुबेर : मैं तुम्हें अपनी प्रिया के रूप में स्वीकारना चाहता हूं।

बालीसा : क्या यह उचित होगा, अतिथि?

कुबेर : मुझे अतिथि न कहो प्रिय! प्राणबल्लभ कहो!

बालीसा : प्रिये, मुझे तुम्हारा निवेदन स्वीकार है।
{संगीत-प्रवाह।}

वाचक : हेमेंद्र बालीसा और कुबेर की ही संतान था, जिसने अपनी मां के नाम पर मंदार क्षेत्र का नाम बालीसा नगर रखा था।

वाचिका : बालीसा-कथा में कहीं-कहीं अलौकिकता का रंग अवश्य घुल गया है, पर इस रंग के हटते ही सब कुछ विश्वसनीय हो जाता है।

वाचक : बालीसा जिस पापहरणी सरोवर के पास विरूप होने के बाद रहा करती थी, वह सरोवर मंद्राचल की दक्षिणी चट्टान की जड़ से सटा हुआ है।

वाचिका : यह सरोवर पापहरणी इसलिए है, क्योंकि इसके जल में शरीर के रोगों को शमन करने की शक्ति थी, है।

वाचक : बालीसा की काया का कष्ट भी इसी कारण दूर हो गया था।

वाचिका : और जब गौतम ऋषि की पत्नी के साथ इंद्र ने छल किया था, तथा ऋषि के कोप के कारण इंद्र अपने शरीर से अशोभनीय हो उठा था, तब वह मंद्राचल के कुंडों में स्नान करने के बाद ही अपने शरीर की विरूपता से मुक्त हो पाया था। यह कथा पुराण की है। कथा तो यह भी है कि मंदार पर और इसकी जड़ों पर जितने कुंड पाए जाते हैं, वे सुरों-असुरों ने इसलिए बनाए थे कि इंद्र प्रत्येक दिन अलग-अलग कुंड में स्नान कर ऋषि के शाप से मुक्त हो सके।

वाचक : यह इसलिए भी अविश्वसनीय नहीं है, क्योंकि मंद्राचल अमूल्य औषधियों का स्वर्ग था, और अमृत उन्हीं औषधियों का रस मात्र।

वाचिका : पर्वत के पैर पर झील-सी बिछी पापहरणी के औषधियुक्त जल के महत्व को दर्शाने के लिए पुराण-शैली की कई प्रसिद्ध कथाएं इस मंदार क्षेत्र में फैली हुई हैं।
{ढोल-मृदंग की ध्वनि।}

नट : सुनो कथा शूकर की,
संग में पापहरणी के बल को,
हिला सका न समय आज तक,
जिसकी प्रभा अटल को।

नटी : एक बार व्याधे के डर से
शूकर सरपट धाया,
पापहरणी के गहरे जल में डूबा,
उबर ने पाया।

नट : जब ऊपर आया, तो उसका
रूप नया था, नर का,
एक अनूठा रूप लिए था,
अद्भुत राजकुंअर का।

नटी : और स्वर्ग से आया लेने
पुष्प सुसज्जित यान,
बैठा राजकुंअर वह पहुंचा
स्वर्गलोक-सुरधाम।
{ढोल-मृदंग की ध्वनि।}

वाचक : धन्वंतरी को औषध पुरुष कहा गया है, और वह समुद्र मंथन के 14 रत्नों में 13वें रत्न थे।

वाचिका : धन्वंतरी मंद्राचल पर निवास करनेवाले और औषधियों के ज्ञाता पुरुष थे।

वाचक : धन्वंतरी को अंग देश के राजा रोमपाद के कुलगुरु दीर्घतमा ऋषि का पुत्र भी कहा गया है और दिवोदास को धन्वंतरी का पौत्र।

वाचिका : दिवोदास भी अपने दादा की तरह आयुर्वेद के महान ज्ञाता हुए, जो अपने दादा के साथ ही मंदराचल पर निवास करते थे।

वाचक : समुद्र मंथन के 14 रत्नों में चन्द्रमा और लक्ष्मी के नाम आते हैं।

वाचिका : चन्द्रमा अत्रि ऋषि का पुत्र था और अत्रि ऋषि का निवास स्थान प्रयाग कहा गया है।

वाचक : चूंकि, सुराधिपति इंद्र चन्द्रमा के गुरु ही नहीं, अभिन्न मित्र भी थे, इसी से चन्द्रमा को धन्वन्तरी से आयुर्वेद के ज्ञान का सुअवसर प्राप्त हो सका। जब चंद्रमा मंदराचल आया, तो स्थाई रूप से वह यहीं बस गया।

वाचिका : इसी से चन्द्रमा को मंदार-मंथन के 14 रत्नों में ही गिना गया है। चूंकि चन्द्रमा ज्योतिष और नक्षत्र विद्या का प्रकांड विद्वान था, इसी से 14 रत्नों में चन्द्रमा का एक होना स्वाभाविक ही था।

वाचक : समुद्र मंथन की कथा बहुत कुछ मंदराचल, इसके भूगोल और यहां पर हुए सांस्कृतिक समन्वय का ही इतिहास है।

वाचिका : असुरों की राजधानी मंदराचल की चीर नदी अर्थात क्षीर नदी के निकट आकर विष्णु स्थाई रूप से बस गए थे। कहा तो यह भी जाता है कि मंदार के तल की पूर्वी चट्टान पर बहनेवाली दुधिया धार ही वह क्षीर नदी है, जहां विष्णु शेषशायी रहते थे। विष्णु के साथ लक्ष्मी का विवाह हुआ था, जिनका जन्म समुद्र से हुआ था।

वाचक : लक्ष्मी भी मंदराचल की बेटी है, रूप और ऐश्वर्य की देवी और जब मंदार की इस पुत्री को विष्णु ने पत्नी रूप में स्वीकार किया, तो वह 14 रत्नों में एक रत्न बन गई, मुझे तो यही लगता है।

वाचिका : मंदराचल के दक्षिण पाद पर पूर्व से पश्चिम की ओर फैली पापहरणी के जल पर जितनी लहरें नहीं उठती, उससे अधिक इनके हृदय पर मंदराचल की छवियां उभरती हैं।

वाचक : पापहरणी के पाप विनाशक जल की जानकारी पुराण काल के लोगों को ही नहीं थी, इसका महत्व आधुनिक काल तक सुरक्षित रहा।

वाचिका : इतिहास कहता है कि दक्षिण भारत के चोलवंशी राजा छत्रसेन का कुष्ठ रोग इसी पापहरणी सरोवर में स्नान करने से दूर हो गया था, और रोगमुक्त होने पर छत्रसेन ने इस सरोवर को बड़ा आकार दिया।

वाचक : लेकिन इतिहासकार राखालदास बनर्जी ने लिखा है कि सरोवर को यह विस्तृत आकार आदित्यसेन की पत्नी कोण देवी ने ईसवी सन 6वीं शताब्दी में दिया था।

वाचिका : पापहरणी सरोवर के पूर्वी छोर पर पत्थर की सीढ़ियां निर्मित हैं। कभी इसी पूर्वी छोर पर पापहरणी देवी की मूर्ति हुआ करती थी, जो अब भग्नावशेष रूप में ही प्राप्त है।

वाचक : पापहरणी आज भी अमृत प्राप्ति की कथा कहती मनोहर कुंड की तरह फैली हुई है।

निर्देशक : छाँव यह मंदार की।
पुण्य देती पापहरणी
इंद्रधनु-सी पुष्पवर्णी,
सलिल निर्मल-छंद दोहा
लहर जिसकी है - शिखरनी;
ज्यों निधि संसार की ।
छाँव यह मंदार की ।।
(संगीत-प्रवाह)

वाचिका : कलियुग में सत्युग का सुख देनेवाली पापहरणी का सौभाग्य मकर संक्रांति के काल में देखते ही बनता है.

वाचक : इसमें पवित्र स्थान के बाद अतिथि और तीर्थयात्री मंदराचल के शिखर के स्वर्ग तक सदेह पहुँचने के लिए प्रस्थान करते हैं।

वाचिका : पापहरणी के उत्तरी छोर से कुछ पूर्व हटकर, मंदराचल के शिखर तक पहुंचने का एक मुख्य मार्ग बना हुआ है। यानि चट्टानों पर खुदी हुई सीढ़ियां।

वाचक : ये सीढ़ियाँ उठती गई हैं, पर्वत के मध्य भाग तक। 299 से कुछ अधिक ही हैं इनमें पदधारक। जहाँ आखिरी सीढ़ी समाप्त होती हैं, वहीं है नरसिंह भगवान का गुफा-मंदिर।

वाचिका : 'बिहार दर्पण' के लेखक पंडित गदाधर अम्बष्ठ के अनुसार, चट्टानों को काटकर बनाई गई यह सीढ़ियाँ उग्र भैरव नाम के एक राजा ने बनवाई थीं।

वाचक : सीढ़ी पर कदम रखते ही पर्वत की दायीं ओर चट्टानों पर उकेरी गई मूर्तियां और भी स्पष्ट रूप में प्राप्त होने लगती हैं।

वाचिका : सबसे पहले 8 भुजाओं वाली काली की प्रस्तर मूर्ति, सूर्य स्तम्भ, और सूर्य स्तम्भ के ही कुछ ऊपर, 2 मुख के साथ 8 भुजाओं के महाकाल भैरव की विशाल मूर्ति।

वाचक : महाकाल भैरव के ही कुछ ऊपर उठकर छोटी-सी गणेश की मूर्ति है, और गणेश से ही कुछ ऊपर चट्टान पर खुदी सरस्वती की छोटी-सी मूर्ति।

वाचिका : इसी प्रकार मूर्ति के आगे है - समांतर रूप से पर्वत को घेरती और लगभग ३ हाथों की दूरी बनाए चलती रेखाएं, जिन रेखाओं की चौड़ाई भी एक फीट से कम नहीं है।

वाचक : लोक विश्वास है कि ये रेखाएं वासुकी नाग की हैं, जिससे मंदराचल को बांधा गया था,
(ढोल-मृदंग की ध्वनियां।)

नट : नाग बासुकी से बांधा तब
मंदराचल को सबने,
पूंछ धरे सूर, फन असुरों ने,
सागर लगे वे मथने।

नटी : बार-बार के फुफकारों से
निकल रही थी आग,
नाग बासुकी के घर्षण से
गिरि पर पड़ गए दाग।
(ढोल-मृदंग की ध्वनियां।)

वाचिका : आज भी लोक विश्वास ऐसा ही है, लेकिन लगता तो यही है कि नरेश उग्र भैरव ने ही ये रेखाएं भी प्रतीक रूप में खुदवाई होंगी, जो रेखाएं पर्वत को पूरी तरह से घेरती भी नहीं है।

वाचक : जहां तक मंदार मंथन के साथ बासुकी नाग की कथा का सम्बन्ध है, उसे पुराणों के इतिहास कथन की शैली से बाहर निकाल कर देखें, तो यह इतिहास सम्मत ही लगता है।

वाचिका : अंग प्रदेश के दक्षिणी भाग पर नागवंशी राजाओं का आधिपत्य रहा है। हालांकि इतिहास नागवंशी राजाओं के अति प्राचीन अंश पर शंका ही प्रकट करता है, लेकिन नागवंशियों का प्राचीन इतिहास पुराणों में भी सुरक्षित है।

वाचक : ये नागवंशी सुरों और असुरों से आत्मीय सम्बन्ध रखते थे, इसी से जब मंदराचल को मथनी बनाकर सागर-मंथन की संधि हुई, तब दारुका वन के नागवंशी राजा बासुकी ने भी इस अभियान में भारी मदद की होगी।

वाचिका : यह दारुका वन वर्तमान में झारखण्ड का देवघर जिला है, जिसे मंदार क्षेत्र ही कहा गया है। देवताओं का साथ देने के कारण नागवंशी बासुकी की प्रतिष्ठा स्वयं ही बढ़ती गई होगी, और वह असुरों के साथ सुरों के भी पूज्य हो गए थे।

वाचक : मंदराचल के हृदय-प्रदेश पर अंकित की गई ये सर्प रेखाएं प्रतीक में इसी इतिहास को कहती रेखाएं हैं।

वाचिका : वासुकी नाग की इन रेखाओं के कुछ और ऊपर, आरोहण-मार्ग की बाईं ओर ही एक ध्वस्त भवन के अतिरिक्त एक दूसरा भी ध्वस्त भवन है, जो यहां के लोगों में त्रिशिरा मंदिर के नाम से विख्यात है।

वाचक : इसी स्थल पर 3 मुंह की एक विशाल मूर्ति खंडित अवस्था में है। यह मूर्ति महाकाल भैरव की है।

वाचिका : त्रिशिरा मंदिर से पर्वत के आगे का मार्ग ढालुवा होने के कारण काफी भयावह है।

वाचक : लेकिन यात्रियों की सुरक्षा के लिए इसी जगह पर चट्टानों को छीलकर जो सीढ़ियां बनायी गयी हैं, वे कलात्मक भी हैं। सीढ़ी में धापों की संख्या 150 से कुछ अधिक हैं।

वाचक : सीढ़ी के इस मार्ग से ऊपर उठने पर, सीढ़ी के पूरब यानि दायीं ओर ही प्राचीन शिलालेख मिलते हैं, जो समय की मार से अब घिसे रूप में प्राप्त हैं।

वाचिका : शिलालेखों के ऊपर ही फिर 8 भुजाओं वाली सरस्वती की प्रस्तर मूर्ति अचानक ही आंखों को अपनी ओर खींच लेती है, जो सीढ़ी से ही सटी हुई है। आज भले ही इस अष्टभुजा सरस्वती का एक ही मुंह शेष रह गया है, लेकिन कभी यह तीन मुंह की ही प्रस्तर प्रतिमा थी। चट्टान पर शेष बचे चिह्नों से इसके अतीत को जाना जा सकता है।

वाचक : ठीक, मूर्ति से आगे बढ़ने पर मुख्य रास्ता विभाजित होकर दो भागों में बंट जाता है। एक मार्ग तो सीता कुंड के दक्षिण से होते हुए नरसिंह गुफा मंदिर की ओर निकल जाता है,

वाचिका : और दूसरा भाग सीता कुंड के पूरब से होते हुए तथा शंख कुंड को देखते हुए नरसिंह गुफा मंदिर तक पहुंच गया है।

वाचक : लोक विश्वास है कि अपने भाई के वधिक विष्णु से बदला लेने के लिए, अपनी मां दिति के कहने पर हिरण्यकशिपु ने मंदराचल पर ही सौ वर्षों की घोर तपस्या की थी, और ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष होकर उसे वरदान दिया था।

वाचिका : लेकिन जब नरसिंह के हाथों उसका वध हुआ, तो उस खुशी में बालिसा के देवताओं ने मंदार की गुफा में नरसिंह की मूर्ति बनवाई। यह गुफा अपनी ऊंचाई से इस लायक तो नहीं कि भक्त खड़े होकर मूर्ति की पूजा-अर्चना कर सकें, पर बैठ कर कई भक्त एकसाथ भजन-कीर्तन कर सकते हैं।

वाचक : इसी नरसिंह गुफा मंदिर में प्राचीन अंग लिपि का एक शिलालेख भी मिलता है। यह गुफा मंदिर सीता कुंड से ठीक पश्चिमोत्तर भाग में अवस्थित है।

वाचक : नरसिंह गुफा मंदिर के निकट ही वामन भगवान की एक बड़ी प्रस्तर मूर्ति भी अपनी ओर लोगों को खींचती है, और इसी मूर्ति के ऊपर, पूर्व दिशा में, एक विशाल मूर्ति चट्टान पर खुदी है, जो असुरराज मधु का मस्तक है। यह ठीक आकाशगंगा कुंड के निकट ही है।

वाचिका : नरसिंह गुफा मंदिर के निकट ही कभी खुदाई में विष्णु, वाराह और मधुसूदन की आकर्षक मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं। इसी स्थल पर वह गया कुंड भी है, जिसके सम्बन्ध में यह धार्मिक मान्यता है कि अपने पिता दशरथ के निधन पर भगवान राम ने, मंदार-प्रवास के क्रम में, इसी कुंड में पिंडदान किया था। धार्मिक मान्यता तो यह भी है कि श्रवण कुमार की हत्या करने के कारण दशरथ का पाप कुछ ऐसा प्रबल हो गया था कि उसका शमन, पवित्र मंदराचल पर पिंडदान से ही संभव हुआ था।

वाचक : अतीत में यह कुंड पिंडदान का प्रमुख क्षेत्र था।

वाचिका : पर्वत पर कुंड तो कई हैं, लेकिन इनमें आकाशगंगा, शंख कुंड और सीता कुंड ही प्रमुख हैं। सीता कुंड को ही बालिसावासी क्षीरसागर कुंड भी कहते हैं। इनका विश्वास है कि सीता कुंड के उत्तर में शेषशायी विष्णु निवास करते हैं।

वाचक : इसी लोक विश्वास के कारण इसे चक्रावर्त कुंड भी कहा जाता है। यह भी मान्यता है कि मंदार-प्रवास के क्रम में सीता इसी कुंड में स्नान करती थीं, इसी से यह सीता कुंड के नाम से जाना जाता है।

वाचिका : शंखकुंड सीताकुंड से ऊपर उत्तर की ओर है, और शंखकुंड की ओर से सीताकुंड में उतरने के लिए दो जगह सीढ़ियां बनी हुईं हैं। कुंड की दीवार पर अंकित प्रस्तर मूर्तियां कुंड को गरिमा प्रदान करती है।

वाचक : शंखकुंड से ही पर्वत-शिखर पर पहुंचने के लिए दो मार्ग खुलते हैं। एक विश्वनाथ मंदिर की ओर से होकर,

वाचिका : और दूसरा कामाख्या कुंड की ओर से। दोनों ही रास्ते कुछ आगे बढ़कर एक हो जाते हैं। यह संयुक्त मार्ग ही पर्वत के शिखर तक उठता गया है।

वाचक : शंखकुंड के ऊपर, जहां मुख्यमार्ग विभाजित होता है, उसके बीच की खाई में सौभाग्यकुंड और शिवकुंड अवस्थित हैं, लेकिन इनमें सौभाग्यकुंड ही लोक के बीच अधिक प्रसिद्ध है।

वाचिका : लोक प्रसिद्ध है कि सौभाग्यकुंड ब्रह्मा के अष्टदल कमल पर स्थित है, शिवकुंड सौभाग्यकुंड से कुछ ऊपर है, जिसके ही दक्षिण-पश्चिम की ओर सदाशिव का विश्वनाथ मंदिर है। पूरी तरह पत्थर से निर्मित मंदिर, जिसके अन्दर सदाशिव की लिंग वाली प्रतिमा स्थापित है

वाचक : मंदिर, विश्वनाथ मंदिर और स्थापित शिवलिंग के सम्बन्ध में पुरा कथाएं कहती हैं कि मंदारवासी धन्वन्तरी के पौत्र दिवोदास, जो स्वयं आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान थे, एकबार काशी पहुंचे।
(दृश्यांतर)

दिवोदास : अद्‌भुत, धरती पर सचमुच स्वर्ग है यह, काशी राज्य। काश, मैं काशी का नरेश होता!

एक स्वर : (प्रतिध्वनित होते स्वर में)
दिवोदास, यह तो बिल्कुल असंभव है। जिसकी कोई संभावना नहीं, उसकी कोई कल्पना ही क्यों?

दिवोदास : मैं इस असंभव को भी संभव बनाऊंगा। अपनी घोर तपस्या से मैं भगवान विश्वनाथ से यह वर प्राप्त करके ही रहूंगा।

(ढोल-मृदंग का ध्वनि-प्रभाव)

नटी : फिर तो दिवोदास ने कर दी
घोर तपस्या जारी,
कांप उठे तब सूर-मुनि तक ही,
फिर क्या ये संसारी।

नट : विश्वनाथ तब नंगे पांवों
दिवोदास तक आए,
और कहा उससे कि अपनी
इच्छा अभी बताए.

नटी : हर्षित होकर दिवोदास ने
किया निवेदन उनसे,
काशी का नृप होऊं,
वर दें, कम कुछ जरा न इससे।

नट : रह ना सके चुप विश्वनाथ जी,
सब सुनकर यह बोले,
दिवोदास, पूरी इच्छा हो,
काशी नृप भी हो ले।
लेकिन मुझसे कहो,
कहां है, जैसा कि मंदराचल,
धरती पर वह स्वर्ग विमल है,
कमलों में ज्यों शतदल।

नटी : और लौटकर विश्वनाथ ने
फिर तो मंदराचल पर,
शिवलिंग के संग नींव रखी थी
मंदिर की भी, ऊपर।

नट : मंदराचल पर उतर गयीं,
निधियां काशी की सारी,
मंदराचल काशी बन बैठा,
तेज बढ़ा फिर भारी।
(ढोल-मृदंग का ध्वनि-प्रभाव)

वाचिका : दिवोदास के हाथों स्थापित मंदराचल पर इस विश्वनाथ मंदिर के निकट ही कभी धारापतन नाम का प्रसिद्ध तीर्थ था, जो अब जलविहीन होकर विलुप्त हो गया है। यह सौभाग्य कुंड से दक्षिण की ओर अवस्थित था।

वाचक : पर्वत-शिखर पर पहुंचने के क्रम में जाने कितनी प्रस्तर मूर्तियां, जाने कितने कुंड मिलते चले जाते हैं, जिनमें वृद्ध नरसिंह की मूर्तियां और गोदावरी कुंड प्रमुख हैं। गुफाएं भी मिलती हैं।

वाचिका : गोदावरी कुंड से ऊपर आने पर, रास्ते में दक्षिण-पश्चिम की ओर, शुकदेव मुनि का गुफाश्रम है, जहां तक पहुंचने का मार्ग दुर्गम और भयावह है। कहते हैं, मंदराचल पर ऐसी कई गुफाएं हैं, जो विभिन्न मुनियों के आश्रम रही हैं।

वाचक : आधुनिक युग के महान महर्षि भूपेन्द्रनाथ सान्याल अपने एक संस्मरण में कहते हैं,
{ब्रिज म्यूजिक।}

सन्याल : मैंने ध्यान में पर्वत देखा, जिसपर काफी साधु-संन्यासी विचरण कर रहे थे।

(संगीत।)

वाचिका : मन्द्राचल पर बनी गुफाएं, समय के प्रवाह में कुछ तो शेष हो गयी है, और कुछ दुर्गम स्थालों पर होने के कारण आंखों से ओझल हैं।

वाचक : शुकदेव गुफा से ऊपर, उत्तर की दिशा में बढ़ने पर, मार्ग में मन्दिर के भग्नावशेष के साथ-साथ विष्णु और नरसिंह की मूर्तियों के अतिरिक्त एक शिवलिंग भी प्राप्त होता है। ये मूर्तियां, शिखर की ओर बढ़ने के मार्ग में, बायीं ओर मिलती हैं।

वाचिका : इसके बाद फिर वही ईंटों-पत्थरों का ढूह और एक उपेक्षित शिव मंदिर। मंदिर के पास से ही दो रास्ते शिखर मंदिरों की ओर निकलते हैं।

वाचक : एक रास्ता पर्वत शिखर के मुख और बड़े मंदिर के पास जाकर शेष होता है, और दूसरा सीधे पूर्व की ओर जाते हुए शिखर के छोटे मंदिर के पास पहुंच गया है। पूर्व की ओर बढ़ती इसी दूसरी राह की बायीं ओर कलियुग की मूर्ति का अवशेष भी अवस्थित है।

वाचिका :ईटों-पत्थरों के बीच कलियुग की यह मूर्ति जब दिखाई पड़ती थी, तब इसके कंधे पर इसकी पत्नी और इसके हाथ से घिसटती इसकी माँ दिखती थी। घृणा व्यक्त करने के लिए यात्री इस मूर्ति पर ईंट-पत्थर फेंकते रहे, और अब तो यह मूर्ति उन्हीं ईंटों-पत्थरों के बीच गुम हो गई है।

वाचक : कलियुग की यह मूर्ति जिस जगह अस्तित्वविहीन होती है, ठीक वहीं पर, अभी भी एक कुंड को पहचाना जा सकता है, जिसे बालीसावासी बाराहकुंड के नाम से जानते हैं। अभी कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को इस कुंड में पुण्य स्नान करने की धार्मिक प्रथा थी।

वाचिका : ग्रीष्मकाल के लिए प्रकृति ने मंदार पर एक बड़ी चट्टान की छतरी भी बना रखी है, जो योगमठ के नाम से विख्यात है। यह बाराहकुंड से कुछ पूर्व हटकर है। यहां से लौटकर भक्त सीधे शिखर के छोटे मंदिर तक पहुंचते हैं।

वाचक : लोक के बीच यह छोटा मंदिर लक्ष्मी मंदिर के ही नाम से प्रसिद्ध है, जिसके भीतरी कक्ष में 6 चरण चिह्न हैं। वैष्णव मतावलंबी इन चरणों को विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती के चरण चिह्न मानकर पूजा करते हैं। इतिहासकार बुकनन की डायरी में इसका उल्लेख है।

वाचक : इस लक्ष्मी मंदिर के निकट ही एक छोटा सा लक्ष्मी कुंड भी विराजता है, और इस मंदिर से उत्तर, शिखर पर वह बड़ा मंदिर अवस्थित है।

वाचिका : लगभग 6 फीट मोटी दीवारों के इस बड़े मंदिर के भीतर एक बड़ी वेदी पर दो चरण चिह्न हैं। मंदिर का स्थापत्य शिल्प अद्भुत है। गुम्बद है, तो यह भी आंतरिक और वाह्य गुम्बदों से गठित। गुम्बद के बीच प्रवेश का एक रास्ता भी उत्तर की ओर से बना हुआ है।

वाचक : इतिहास कहता है कि गुम्बद का आंतरिक भाग कभी कीमती धातुओं और पत्थरों से संपन्न था, जिसे अपराधियों ने, गुम्बद को काटकर, निकाल लिया था। गुम्बद में बना रास्ता दरअसल अपराधियों द्वारा काटा गया भाग ही है।

वाचिका : जो हो, पर्वत शिखर का यह विशाल मंदिर कभी भगवान मधुसूदन का मंदिर था, जहां इनकी प्रतिमा की पूजा-अर्चना होती थी। इतिहासकार बुकनन ने अपनी डायरी में इसका भी स्पष्ट उल्लेख किया है।

वाचक : काला पहाड़ के आक्रमण के समय मधुसूदन की प्रतिमा को शिखर-मंदिर से निकालकर नीचे ले आया गया, और वहां मात्र विष्णु के चरणों की पूजा ही प्रथा में रह गई। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य कुमारसंभवम् के अष्टम सर्ग में मंदराचल को भगवान विष्णु के चरणों से विभूषित पर्वत के रूप में ही देखा गया है.

एकस्वर : ''पद्मनाभचरणांकिताश्मसु
प्राप्तवत्स्वमृतविप्रषोनवाः.
मन्दरस्य कटकेषु चावसत्पार्वतीवदन
पद्म षट्पदः..''

वाचिका : जैन मतावलंबी शिखर मंदिर के इन चिह्नों को बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के चरण-चिह के रूप में स्वीकारते हैं, और पूजते हैं। उनका यह भी मानना है कि वासुपूज्य का निर्वाण इसी पर्वत-शिखर पर हुआ था। वैसे इतिहास के अनुसार वासुपूज्य का जन्म और निर्वाण भागलपुर की चम्पा में ही हुआ था। चम्पा में प्राप्त चिह्न इसके प्रमाण हैं।

वाचक : मंदार पर्वत जितना वैष्णवों को प्रिय है और जितना जैनों को, उतना ही यह महत्वपूर्ण है, आदिवासियों के लिए भी। मंदार का सारा सौभाग्य मकर संक्रांति के दिन सचमुच सन्धीभूत हो जाता है, जब सफाधर्म के गृहस्थ और वैरागी योगियों की भीड़ पर्वत पर एकत्रित हो जाती है। आदिवासियों के मांदर और वंशी के साथ आदिवासी गीत हवाओं में तैरते हुए शिखर को घेरने लगते हैं।
(आदिवासी संगीत-गीत उभरता है।)
गातेञ तिरयोय ओरोंग मंदार बुरु रे
इञ दोञ नातेन बाड़ाय दाकलो घाट रे।
कान्डांग बागियाक
रेमा होड़को ञेलेञ कान,
बाञ सेनोक रेमा गातेञ ए रूहादीञ।
होड़ रोड़ दोरेञ सहाव गेया रे
गातेञ नेगेर दों तोहोञ सहावले ।।

निदेशक :मंदार पर्वत पर मेरा प्रिय बांसुरी बजा रहा है जिसे मैं पनघट से सुन रही हूं। अगर मैं पनघट पर ही घड़े को छोड़ कर वहां जाती हूं, तो लोग मुझे देख ही लेंगे और फिर मेरी निंदा ही होगी। और अगर प्रिय के पास नहीं जाती हूं, तो वह नाराज़ हो जायेंगे। ऐसे में, लोगों की निंदा को तो मैं सह लूंगी, परन्तु प्रिय की नाराज़गी को मैं कैसे सह सकूंगी?

वाचिका : तब मंदराचल के दक्षिण-पूर्व में इसकी जड़ से सटे शेषशायी भगवान विष्णु की प्रतिमा, जैसे, जाग उठती है। विष्णु के ऊपर कई फन फैलाये शेषनाग कोमल पड़ जाता है और पर्वत के पूरब में स्थित ध्वस्त लखदीपा मंदिर में लाखों दीप, जैसे, फिर से एकबार प्रदीप्त हो उठते हैं, बालिसा नगरी के एक-एक लाख घरों से आए प्रज्ज्वलित दीप।
(आदिवासी संगीत और गीत।)

वाचिका : बालिसा की सारी दिशाओं में बस यही उमंग, यही निवेदन, यही राग गूंजता रहता है.

नारी स्वर :हे गे बहिनियां, पीहने पैजनियां
देखैले जैबै मनार गे।

लाले-लाल टिकुली, लाले-लाल चुड़िया
लाले-लाल सिनुरा, लाले-लाल सड़िया
लाले-लाल झुमका, नकबेसर बढ़िया
लाले-लाल भोर भिनसार गे।
देखैले जैबै मनार गे।
बिसनु जी ऐलै ब्रह्मा जी ऐलै
यही पहाड़ौ सें सागर मथैले
अमृत निकललै, रतन निकललै
देवौ के बेड़ा भेलै पार गे
देखैले जैबै मनार गे...

वाचक : मकर संक्रांति के दिन, कभी मंदराचल के बड़े शिखर मंदिर में स्थापित मधुसूदन भगवान को, पर्वत के पूर्व में बने पुराने मंदिर में लाया जाता है, शाही सवारी के साथ।

(हाथी के चिग्घाड़ने, जयकारों का निनाद, घड़ीघंट-शंख की ध्वनियां।)

वाचक : उन क्षणों में मंदराचल का रोम-रोम पारिजात वन की तरह स्पंदित हो उठा है। ठीक उसी तरह, जब अमृत कुम्भ की प्राप्ति और उसकी स्मृति में पहली बार भारतवर्ष में कुम्भ मेला लगा होगा। यह आश्चर्यजनक नहीं कि मंदार भूमि पर मकर संक्रांति में उमड़ने वाली भीड़ उसी प्रथम कुम्भ मेले का प्रतीक हो, आदि कुम्भ पर्व का प्रतीक रूप, जैसे, सागर झील रूप में यहां बच, गया होगा।

वाचिका : लेकिन झील सागर तो नहीं है, यही कारण है कि उमंग और राग के बीच कहीं एक कोने में मंदार की सिसकियां अभी उभरती रहती हैं, जो पर्वत के भीतर-ही-भीतर गूंजती हैं।

वाचक : मंदार पूछता रहता है, अपने कुंडों से, अपने सरोवरों से, अपनी गुफाओं से, अपने मंदिरों और आसपास उग आए झाड़ियों-कांटों के जंगल से।

वाचिका : कि कहां गए मेरे चारों ओर खड़े और मुझसे बराबरी करते वे जंगल, जो कभी भृष्टराज वन मालूर वन, माधव वन, भारती वन और रेणुका वन, बद्री वन, कमला वन के नाम से विख्यात थे।

वाचक : केतकी, चम्पा, मालती, मौलश्री की सुगंध के साथ हज़ारों किस्म की औषधियों का फैला साम्राज्य।

वाचिका : मंदार पूछता है, आखिर मेरे नीचे उत्तर से पूरब तक फैला नगाड़ा सरोवर मेरी तरह वृद्ध क्यों हो गया? जिसमें समुद्र मंथन के समय भी अपने ऊपर से अमृत को बहते देखा है, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सुरक्षागृह की भूमिका निभाई है, अब इसके जल पर शिशिर ऋतु में भी क्यों नहीं सात सागर को पार करती आती हैं, चिड़ियों के हज़ार-हज़ार झुण्ड। मंदार उदास है कि अतीत के बचे-खुचे वनों के स्मृतियों की जगह कहीं कंक्रीट के जंगल न उग जाएं, अब।

{एक उदास संगीत बिखरता है।}
{समाप्ति संगीत।} ●

मंदार!
तुम्हें शत-शत प्रणाम

हे महादेव के सिद्धपीठ, हे मधुसूदन के दिव्य धाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

सागर मंथन के वर साधन, आध्यात्म चेतना के मंदिर,
आरती उतारा करते हैं दिन-रात तुम्हारी रवि-चंदिर
वैराग्य प्रवण डरते रहते, तुमसे विषयों के तामझाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

हरिहत मधु-कैटभ को अपने चरणों के तले दबाए हो
तुम रामभद्र के पूजा स्थल, हिमगिरि से पहले आए हो।
हे ऋषि-मुनियों की तपोमयी संस्कृति के वाहक ललाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

कर पान हलाहल नीलकंठ, जब निकट तुम्हारे आए थे,
व्याकुल, लिपटे कमलापति से तब कहीं शांत हो पाए थे
विश के प्रभाव से हरि की भी सब देह हो गई घनश्याम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

जन पाप विनाशी तीर्थकुंड हैं सुखद तुम्हारे अंचल में
इंद्र हो गए कलुश मुक्त मज्जनकर जिसके शुचि जल में
भ्रष्टाचारों के रावण को करते आए तुम राम राम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

मंगल वाद्यों की ध्वनि उठती चट्टानों के अंतस्तल से
सुनते जिसे विरल भक्त, रह दूर जगत की हलचल से
तुम श्रद्धा के दाहिने रहे संशय के ही सर्वथा वाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

तन श्यामल, मन से उज्जवल, वर कामधेनु के दोहक हो
हे दिव्य धराधर-सिद्ध पुरुश, तुम रहे प्रकृति से मोहक हो
युग-युग से अविकल समाधिस्थ, हे वीतराग, हे वीतकाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

दश-दश अवतारों की गरिमा-पावन तीर्थों में लिए हुए,
तुम भुक्ति-मुक्ति दोनों देते, साधना सोम को पिए हुए
आसुरी वृति फिर लूट रही, दैवी-संपद के दाम-दाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

भोली बाबा, रामेश्वर झा साधक द्विजेंद्र भूपेंद्र नाथ
कह रहा तुम्हारा तुंग श्रृंग माधवन संत की पुण्यगाथ
तुम मधुसूदन से कहो उठें ले मानवता का हाथ थाम।
मंदार तुम्हें शत-शत प्रणाम।।

डा. अनंतराम मिश्र 'अनंत'

संपर्क :
क्रेन ग्रोअर्स नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज,
गोला गोकर्णनाथ, खीरी (उ.प्र.)
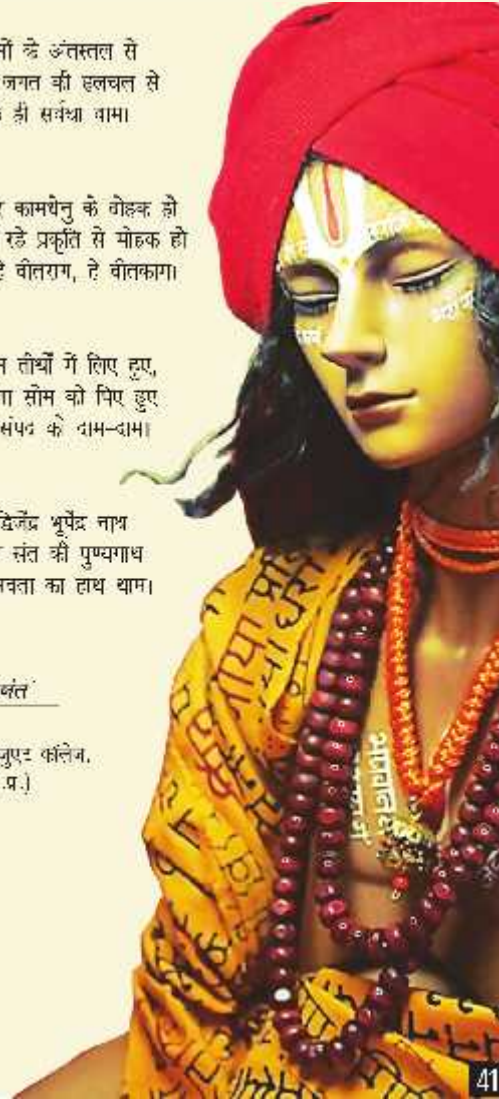
मैं हिमगिरि का अग्रज, चिरायु लोमश समान,
हरि-लक्ष्मी का अधिवास, सनातन भू-भृत हूं।
गर्वोन्मद सागर के मंथन का श्रेय लिये
'मंदार-अद्रि' अभ्रंकश, व्यापक विस्तृत हूं।

भारत के उच्चादर्शों - से हैं प्रांशु शिखर
मेरे प्रस्तर संगीत-वाद्य से परिचित हैं।
बह रही बुद्ध की करुणा सी बेटी 'सुखदा'
जिसकी लहरों में गीत-प्रीति के गुंजित हैं।

जन-मन-पावनकारिणी तीर्थ-गरिमाओं से
साधना सिद्धियों से मैं महिमा मंडित हूं।
सांस्कृतिक चेतना का सुसभ्य उन्मेश लिये,
गौरव 'विहार' को देता रहा अखंडित हूं।

उद्ग्रीव गगन में मैं वह वैभव खोज रहा,
जिसको कर डाला महाकाल ने छिन्न-भिन्न।
फिर भी निसर्ग के कला-समन्वित हाथों से
सुंदर स्वरूप को निरख नित्य रहता अखिन्न।

घन-श्याम-तुल्य शुचि श्याम लाभ मेरी काया
जब शुभ्र चंद्रिका का आलिंगन करती है।
तब मानो यमुना से गंगा मिल जाती है
यों तीर्थराज सी महिमा मुझमें भरती है।

मरकत मणि सी हरियाली व्यापक अंचल में
तरु गुल्मों का शोभन संसार विभूषित है।
राधिका-प्रकृति से पुरुष श्याम का महारास
मुझसे ब्रज में रहता उर नहीं प्रदूषित है।

इतिहास, कला, साहित्य, धर्म, सभ्यता-मर्म
वेत्ता, मेरे शृंगों की छटा निराली है।
प्रत्नता और नवता का मैं संबंध-सेतु
की मिथकों ने अर्पित श्रद्धा सुमनाली है।

मंदिरों, तड़ागों, तीर्थों, कुंडों से शोभित
मेरे परिसर से मानव जीवन उपकृत है।
सुंदरी लताओं-वल्लरियों से संसर्गित,
मंथर मलयज की वीणा मुझ में झंकृत है।

मैं हिमगिरि का अग्रज

डा. अनंतराम मिश्र अनंत

है याद 'वालिशा नगरी' का वैभव अकूत,
'लखदीपा मंदिर' की जगमग दीपावलियां।
क्या कहूं क्रूर परिवर्तन को ?जिसने कुचलीं
इन भग्न मंदिरों में सुंदरता की कलियां।

मेरी उपत्यका में जो विद्यापीठ भव्य
वह मेरा नामाराशि, ज्ञान-प्रदाता है।
संस्थापक जिसके संत 'माधवन', महामना,
जिनमें हिंदी सेवा समुद्र लहराता है।

माधवन रहे दक्षिण मेरे हैं दक्षिण के,
सेवक अनन्य हैं राष्ट्र भारती के अजस्र।
जो किया अकेले महत्कार्य, ले श्रम संबल
उसे क्या कर सकते हैं मिलकर जन सहस्र।

माधवन साधना के सुहाग, तप के सहचर,
स्वर्गिक स्वप्नों के रूपाकार शुभंकर हैं।
लेखन के अक्षय स्रोत, सुकविता के निर्झर,
हैं शब्दब्रह्म 'आनंद' धर्म के 'शंकर' हैं।

मेरे प्रांतर में आकर संत अनंत तपे,
कर सफल साधना, पा स्वरूप का बोध गए।
पर साधु विरल देखे मैंने माधवन-सदृश,
जो परहित का पथ, ज्ञान यज्ञ कर शोध गए।

ऐसे सुपुत्र को पाकर मैं हो गया धन्य,
भारतमाता भी हैं प्रसन्न सत्पुत्रवती।
आशीष कि करता रहे लोक संग्रह यों ही
होकर चिरायु, चिर-स्वस्थ सदा यह ज्योतिव्रती।

देखैले जैबै मंदार गे

हे गे बहिनियां, पीहने पैजनियां
देखैले जैबै मंदार गे।

लाले-लाले टिकुली
लाले-लाले चुड़िया
लाले-लाले सिनुरा
लाले-लाले सड़िया
लाले-लाले झुमका, बेसरो बढ़िया
लाले-लाले भोर भिनसार गे।

पच्छिम दिशा में चानन बहै छै
पूरब दिशा नदी चीर चलै छै
दक्खिन में बैजू रं दानी छै औढ़र
उत्तर बहै गंगाधार गे
देखैले जैबै मंदार गे...

बिसनु जी ऐलै ब्रह्मा जी ऐलै
यही पहाड़ौ सें सागर मथैले
सागर मथैला सें रतन निकललै
राक्षस के भैले संहार गे
देखैले जैबै मंदार गे...

ऊपर मथानी पर शिवजी बिराजै
बीचो में नरसिंह बाबा बड़ी मन भावै
नीचें पापहरणी कें पानी पाप हारी
मसूदन के महिमा अपार गे
देखैले जैबै मंदार गे...

रामकुंड, सीताकुंड, शंकरकुंड भारी
यहीं ऐलै रिसिमुनी साधु जटाधारी
पहाड़ो के भीतरौं में बाजै छै बाजा
सुनै छियै बिसनुजी दरबार गे
देखैले जैबै मंदार गे...

हे गे बहिनियां, पीहने पैजनियां
देखैले जैबै मंदार गे।

प्राण मोहन प्राण
संपर्क :
साहा फर्निचर,
पीएनडी हाइस्कूल के सामने,
बौंसी, जिला- बांका, बिहार

कन्याकुमारी के निकट
दक्षिण समुद्र में
आज से पचास वर्ष पहले
उठा था भारी तूफ़ान, नीरव उत्तराभिमुख
उसी वात्या चक्र में उड़कर आया इधर
चन्दन का एक बिरवा!
पचा चुका है जाने कितनी बार
जहरीले नागों के प्राणशोषी दंशन
पहन चुका है जाने कितनी बार
पुरानी केंचुलों के जगमग हार
फिर भी खड़ा है निरपेक्ष, निर्विकार
लुटाये जा रहा है सौरभ लगातार
मिला था मलयद्रुम यह उत्तर को उधार
धन्य है मंदार
धन्य है बड़भागी बिहार!

बाबा नागार्जुन

आनंद शंकर माधवन

श्री आनंद शंकर माधवन पर प्रख्यात कवि बाबा नागार्जुन ने यह कविता लिखी थी। वे श्री माधवनजी से मिलने कई बार मंदार विद्यापीठ आए। वे इनके साहित्य प्रेम और शिक्षा का प्रसार की भावना के कायल थे।

मंदार तुझे शत बार नमन

नरेश जनप्रिय

मंदार तुझे शत बार नमन।
एक शिलाखंड अवतार नमन।।

अति गरिमामयी तेरा अतीत
तेरी वेद-पुराण में भरी कथा।
समस्त देवों के हित तूने
मथनी बनकर सागर को मथा।
तेरे ही श्रम से, हे मंदार!
निकले समुद्र से चौदह रतन।
मंदार तुझे शत बार नमन।

तुम सब धर्मों के केंद्र स्थल
अनगिनत कुंड तेरी गर्दन पर।
हो जाते धन्य-धन्य मानव
तेरे पावन भाल का दर्शन कर।
सृष्टि के मूक गवाह को पा
आह्लादित बांका का कण-कण।
मंदार तुझे शत बार नमन।।

LOCAL ADMINITRATIVE TELEPHONE DIRECTORY

COMMISSIONER, Bhagalpur	(0641) 2401001, 2401201, 9431214750
I.G, Bhagalpur	(0641) 2400101, 2400901, 9431822953
DIG, Bhagalpur	(0641) 2400102, 2400202, 9431822958
DM, Banka	(06424) 222304, 222303
AC/ADC	(06424) 221219, 222291, 9473191388
DDC	(06424) 222288, 223686, 9431213569
Land Acquisition Officer	9431213020
Director NEP	9934613070
Deputy Election Officer	(06424) 221048, 9473040720
DRDA Director	
Accounts	9431234118
OSD (Confidential Sec.)	(06424) 222280, 9662560529
SDO	(06424) 222226, 222225, 9473191389
Establishment Dy. Collector	9431826705
District Mid Day Meal Officer	9431844616
District Panchayati Raj Officer	(06424) 221005, 9771812253
DCLR	(06424) 223137, 9431456663
DTO (District Transport Officer)	9430215310
Divisional Officer, Forest (DFO)	(06424) 222216, 222347, 9431821046
Asst. Director Social Security Cell	(06424) 222704, 9430007542
Sub Registrar	(06424) 223691, 223691, 9470833932
Dairy Officer	9835460127
Mining Inspector	9934297988
Sub Election Officer	9525541075
District Informatics Officer	(06424) 223119, 223135, 9430456152
Sub Divisional Supply Officer	9431849022
District Welfare Officer	9135093231
District Program Officer ICDS	9431266861, 9431005052
TO (Treasury Officer)	(06424) 231458, 9431262025
Assistant Treasury Officer	9431462991
District Agriculture Officer	(06424) 223828, 9431946753, 9431818749
District Fishery Officer	9430473189
District Planning Officer	9430264857
GM, District Industries Officer	9430861011
Statistical Officer	9798890647
Labour Superintendent	(0641) 2420053, 9934861590
Fire Brigade	(06424) 223896, 9955832027
Post Office	(06424) 222353
Factory Inspector	9798635570
District Soil Conservation Officer	9470018533, 7250638076
Asst. Dist. Public Relation Officer	9430001772
Assistant Forest Officer	9473199789
Jailor	9431429153
Excise Superintendent	9334889517, 9473400641

Excise Inspector	9470483797, 9835271174
DEO (District Education Officer)	9934681783
Dist. Prog. Officer, Primary & BEP	9431424844
Dist. Prog. Officer, Mid Day Meal	9430874605
District Program Officer	9430725649, 8969878408
District Husbandry Officer	9934659228
Civil Surgeon	(06424) 222882, 222742, 9934206253,
Program Officer	9431005052
BDO (Block Development Officer)	
Banka	(06424) 222139, 9431818600, 9431818291
Amarpur	(06424) 235397, 9431818289
Barahat	9431818288
Bounsi	9431818601
Rajoun	9431818292
Dhoraiya	(06424) 259130, 9431818287
Shambhuganj	9771533974
Phulidumar	(06424) 250624, 9431818294
Belhar	9431818293
Katoriya	9431818602
Chandan	9431818290
CO (Circle Officer)	
Amarpur	9431796513, 9304259824
Barahat	9470293004
Bounsi	9470015792
Rajoun	9473372294
Dhoraiya	9934788533
Shambhuganj	9835645696
Belhar	9431881348
Katoriya	9546695356
Chandan	7739130540
Banka	9431469126
Amarpur MO	**9431470899**
Supply Inspectors	
Barahat	9709559905
Bounsi	9931868336
Rajoun	9430470489
Dhoraiya	9801812955
Shambhuganj	9430455806
Phulidumar	9931442159
Belhar	9006229090
BWO, Banka	9430211959

CDPO (Child Development Project Officer)

Banka	9431005544
Amarpur	9431005539
Barahat	9431005541
Bounsi	9431005542
Rajoun	9431005547
Dhoraiya	9431005545
Shambhuganj	9431005548
Phulidumar	9431005549
Belhar	9431005543
Katoriya	9431005544
Chandan	9431005546

POLICE

SP	(6424) 232306, 232305,9431800004
SDPO, Banka	(6424) 232236, 232229,9431800030
DSP, HQ	(6424) 232306, 233379
Amarpur (Police Station)	(6420) 222027, 9431822634
Banka (Police Station)	(6424) 232227, 9431822635
Barahat (Police Station)	(6424) 235337, 235770, 9431822632
Baunsi (Police Station)	(6424) 237730, 237100, 9431822631
Belher (Police Station)	(6442) 258360, 9431822626
Jaypur (Outposts)	(6425) 257027
Katoria (Police Station)	(6425) 250499, 250940, 9431822628
Rajaun (Outposts)	(6420) 278004, 9431822629
Sambhuganj (Police Station)	(6420) 285333, 9431822633
Suiya (Outposts)	(6425) 256700
Dhuraiya (Police Station)	9431822630
Chandan (Police Station)	9431822625

हम लड़ते रहे -
- मंदारहिल लाइन को रामपुरहाट तक एक्सटेंशन के लिए
- बौंसी में रेफरल अस्पताल, केंद्रीय विद्यालय के लिए
- मंदार को पर्यटन क्षेत्र का दर्जा दिलाने के लिए
- हर गांव को सड़क, बिजली, पानी और न्याय के लिए
- भ्रष्टाचार को समूल संहार करने के लिए

हम लड़ेंगे -
- जाति, धर्म, प्रशासनिक जड़ता जैसी कुरीतियों के खिलाफ

हम पक्षधर हैं -
- विकास, सेवा और जागृति के
- हर क्षेत्र में सभी धर्म के युवाओं की सहभागिता के
- प्रशंसनीय कार्य करनेवालों के उत्साहवर्द्धन के
- धर्म की जड़ता को मिटाने व उचित मार्गदर्शन के
- सदाचार व स्वच्छता अपनाकर रूढ़ियों को समाप्त करने के
- भारत की बेटियों के कल्याण के

चलिए, एक नया समाज बनाएं।